कुड़मी समुदाय की सांस्कृतिक-धार्मिक परम्परा

डॉ० वृन्दावन महतो







के. के. पब्लिकेशन्स

कुड़मी समुदाय की सांस्कृतिक-धार्मिक परम्परा

लेखक
डॉ० वृन्दावन महतो
एसिसटेंट प्रोफेसर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (कुड़माली)
मारवाड़ी कालेज (रांची)

के० के० पब्लिकेशन्स
इलाहाबाद - 211002

प्रथम संस्करण : 2018

मूल्य : रु० 125.00

ISBN : 978-81-87568-26-1

प्रकाशक : के० के० पब्लिकेशन्स
618, कटरा, इलाहाबाद – 211002, (उ० प्र०), भारत
मोबाइल : 9389485578

कारपोरेट आफिस : L.D. 122, A.D.A. Colony. Naini. Allahabad-211008

टाइप सेटिंग : शान्ती कम्प्यूटर, इलाहाबाद

मुद्रक : रिपब्लिकन प्रेस, इलाहाबाद

आभार

किसी महान् कार्य-सम्पादन में जिन महान् आत्माओं का सहयोग प्राप्त होता है, उनके स्मरण मात्र से ही सारे कार्यों की सिद्धि प्राप्त होती है। सर्वप्रथम मैं अपने परम पूज्य गुरुदेव डॉ० राम दयाल मुण्डा का आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद मेरे लिए समय निकालकर मुझे दिशा-निर्देश दिया। इसके बाद मैं अपने जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग के गुरुदेव डॉ० बी० पी० केसरी, डॉ० कुमारी बासन्ती, डॉ० रोज केरकेट्टा, डॉ० एच० एन० सिंह, प्रो० के० सी० टूडू, प्रो० इन्द्रजीत उरांव, प्रो० बी० बी० नाग का भी आभारी हूँ तथा विभाग के कर्मचारी श्री अशोक उरांव, बुनी दी, राजा राम आदि का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में लेखन मदद की। तत्पश्चात् मैं अपने मित्र संजय बसु मल्लिक का आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक की रूपरेखा तैयार करने में मुझे मदद की। मैं उडिसा निवासी पद्मलोचन महतो, पूर्णचन्द्र महतो तथा भीम महतो का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर उत्साह बढ़ाने में सहयोग दिया। पश्चिम बंगाल के केशवचन्द्र महतो, आनन्द खुंटदार, ललित मोहन महतो, डॉ० विनय महतो तथा डॉ० विभूति भूषण महतो आदि के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। लखीकान्त महतो, डॉ० शशिभूषण महतो, डॉ० मनोरमा कुमारी, डॉ० पी० पी० महतो, डॉ० पी० के० सिंह, डॉ० संतोषी जैन, श्री बसन्त कुमार मेहता आदि का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य क्षेत्र में भरपूर मदद की।

अन्त में मैं उन पुस्तकालयों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का भी आभारी हूँ जिन्होंने शोध-कार्यवधि में सामग्री उपलब्ध कराया। जनजातीय शोध-संस्थान, रांची, डॉ० कामिल बुल्के शोध-संस्थान, रांची, जेवियर समाज सेवा संस्थान, पुरुलिया रोड, रांची, मारवाड़ी कालेज पुस्तकालय, रांची, केन्द्रीय पुस्तकालय, रांची विश्वविद्यालय, रांची, बिहार राज्य पुस्तकालय, रांची, जनसंस्कृति उन्नयन, झाड़ग्राम (पश्चिम बंगाल)। इसके साथ ही मैं अपनी अर्धांगनी डॉ० राजश्री महतो का भी आभारी हूँ, जिसने आर्थिक संकट में रह कर मुझे अपने मंजिल तक पहुँचने की शक्ति प्रदान किया। अन्त में आदि देव महादेव के साथ सभी ग्रामीण देवता-भुताओं का भी आभारी हूँ जो इस कार्य सिद्धि में किसी प्रकार का बिघ्न नहीं हुआ।

डॉ० वृन्दावन महतो

अनुक्रमणिका

— — — —

अध्याय –1

कुड़मी की वर्तमान भौगोलिक स्थिति

झारखण्ड के कुड़मी की वर्तमान भौगोलिक स्थिति सविस्तृत है एवं यह क्षेत्र बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। कुड़मी की भौगोलिक स्थिति की जानकारी से पूर्व हमें एक प्रचलित कहावत स्मरण आती है—''शिख सिखर नागपुर, आघा-आधी खड़गपुर'' इसी कहावत के अनुरूप यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कुड़मी का विस्तार किस रूप में हुआ है, यद्यपि कुड़मी जिस स्थान पर रहता था, उस स्थान से हट कर उसने दूसरी जगह को अपना निवास-स्थान बनाया तथापि उसने पुरानी जगहों को भी नहीं छोड़ा। कुड़मी जन्मजात खेतिहर हैं, इसलिए नदी-घाटी को ही इन्होंने प्राथमिकता दी है, जहां से इसकी फसल की सिंचाई आसानी से तथा सुविधापूर्वक हो सके। इसलिए कुड़मी के गांव अधिकांशत: नदी किनारे पाये जाते हैं। जैसे—सुवर्ण रेखा, कंसावती, दामोदर, कांची, राढु खड़काई डुलुङ नदी आदि। कुड़मी भाषा में सुवर्ण रेखा को सबरनाखा तथा कंसावती को कांसाई कहा जाता है। इस तरह इन नामों का भी नामकरण कुड़माली नाम है।

कुड़मी यों तो बिहार में रांची, हजारीबाग, गिरिडीह, धनबाद तथा सिंहभूम और मानभूम में बसे हुए हैं, ये पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, बांकुड़ा, मेदिनीपुर तथा उड़ीसा के मयूरभंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़, सम्बलपुर तथा मध्य प्रदेश के सुरगुजा और रायगढ़ आदि जिलों में भी इनका निवास है। इसके अलावे ये बिहार में पूर्णिया, असम, पश्चिम बंगाल के नदियां, चौबीस परगना आदि स्थानों में भी इनका निवास-स्थल है। झारखण्ड की भौगोलिक प्रकृति और बिहार, बंगाल, उड़ीसा की समतल भूमि की भौगोलिक प्रकृति के मध्य एक विशेष

प्रकार की भिन्नता विद्यमान है। यह भिन्नता इतिहास को भी स्पर्श करती है साथ ही साथ भाषा और संस्कृति के आधार में भी इसकी विशेषता परिलक्षित होती है।

यह कहा जाता है कि मनुष्य जैसे-जैसे संख्या में बढ़ते गये, वैसे-वैसे दूर-दूर तक फैलते गये और यह क्रम लगभग मनुष्य की सृष्टि से ही होता आ रहा है। वस्तुतः मनुष्य अपना उद्‌गम स्थान को भूल जाता है और नये स्थानों की परिकल्पना करता है। यह सिलसिला सैकड़ों वर्षों तक चलता है। इसलिए मनुष्यों का क्षेत्र-विस्तार दिनानुदिन होता जा रहा है। आज कुड़मी जाति का भी यही हाल रहा, इसलिए फिलहाल इसका भी भौगोलिक विस्तार है, उसे भाषा और संस्कृति से भी ऊपर देखा जा सकता है।

झारखण्ड के कुड़मी का क्षेत्र सिर्फ राजनीतिक मानचित्र में ही सीमाबद्ध नहीं है वरन् मानचित्र को लांघकर इसका विस्तार हुआ है। आज मूलतः तीन-चार राज्यों में ही इसका भौगोलिक विस्तार हुआ है। अगर भौगोलिक विस्तार का लोककथा या लोकगीत के माध्यम से विश्लेषण करें तो कुड़मियों का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत माना जा सकता है, परन्तु स्रोतों के अनुसार जो मुझे प्राप्त हुआ, उस प्रकार से मोटा-मोटी तौर पर तीन ही राज्यों में इनका विस्तार व्यापक रूप से हुआ है—वह है, झारखण्ड, बंगाल और उड़ीसा। बिहार के छोटानागपुर के पठार एवं इर्द-गिर्द जो कुड़मी हैं, वे रांची, हजारीबाग, सिंहभूम, धनबाद, गिरिडीह आता है तथा पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत पुरुलिया, बांकुड़ा, मेदिनीपुर जिले में कुड़मियों का निवास-स्थान है। यह झारखण्ड के राजनीतिक मानचित्र के अनुसार आंकलन किया गया है, परन्तु खोज के अनुसार कुड़मी मालदा, पश्चिम दिनाजपुर के अन्तर्गत भी बसे हुए हैं। ऐसे तो असम के चाय बगान में भी इनका बास स्थान है और वहां अपनी भाषा और संस्कृति को बचाये रखा है। उड़ीसा राज्य के अन्तर्गत मयूरभंज, क्योंझर, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़ आदि स्थानों में कुड़मियों का निवास-स्थान है। और ये टोटेमिक हैं। तथा गोत्र पशु-पक्षि एवं पेड़ पौधों पर आधारित है। साथ ही सभी गोत्रों का अपना "टोटेम" विश्वास है।

भारत सरकार सीमा कमीशन के निर्देशानुसार छोटा नागपुर के अन्तर्गत मानभूम जिला का पुरुलिया सब-डिवीजन, मालदा, बाघमुण्डी अंचल, नवम्बर 1956 ई० में पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले में रूपान्तरित हुआ। यह जिला भौगोलिक, ऐतिहासिक नृतात्विक, सांस्कृतिक, भाषिकी आदि सभी दृष्टियों से छोटा नागपुर का अविछिन्न अंग है। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मानभूम शब्द को राजनीतिक कारणों से विलुप्त करने पर भी यह शब्द आज भी

जनमानस में विद्यमान है। ऐसा लगता है कि बंगाल को खुश करने के लिए इस जिले के अधिकांश अंचलों को उक्त राज्य में विलयीकरण तथा मानभूम को सदा के लिए विलुप्त करने की साजिश थी, पर यह सम्भव नहीं हुआ। आखिरकार कुड़मी तीन राज्यों में विभक्त हो गये।

हम इसको दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वर्तमान समय में कुड़मी तीन राज्यों के अलावा पश्चिम दिनाजपुर और मालदा आदि जिलों में भी निवास करते हैं, परन्तु इनकी संख्या कहीं कम है तो कहीं अधिक है। वर्तमान भौगोलिक दृष्टिकोण से कुड़मियों का बास स्थान असम के चाय बगान में भी है। इसलिए यह कहना तो शायद उचित नहीं होगा कि कुड़मियों का एक निश्चित भू-भाग ही इनका निवास-स्थान है, यद्यपि झारखण्ड, बंगाल, उड़ीसा में इनकी बड़ी संख्या होने के कारण इन क्षेत्रों की चर्चा सहज ही हो जाती है। ऐसे तो जीवन-यापन करने हेतु मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं, परन्तु यह उनका पैतृक स्थान नहीं होता था। यह कहना भी न्यायोचित नहीं होगा कि कहां तक इनकी संख्या है, परन्तु पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहने के बाद पैतृक स्थान हो जाता है, परन्तु इन लोगों का मूल स्थान कहां रहा होगा, उसमें विद्वानों में मतभेद रहा है, फिर भी यथा प्रयास मेरे इन अनुसंधानों से इनके मूल स्थानों का उजागर हुआ है।

— — — —

अध्याय -2

कुड़मियों की संख्या

सृष्टिकाल के बाद से मनुष्यों की संख्या किसी देश की संख्या में कम और और किसी देश की संख्या अधिक है। गर्म प्रधान देशों की अपेक्षा ठंड प्रधान देशों की संख्या में बढोत्तरी कम हुई है। कहीं-कहीं प्राकृतिक आपदाओं के कारण उस देश की जनसंख्या को प्रभावित किया है जिससे जनसंख्या में कमी आई है, परन्तु अधिकांश देश की जनसंख्या बढ़ती हुई नजर आती हैं।

माल्थस जैसे अर्थशास्त्री ने बताया कि गर्म प्रधान देश, कम आयु में विवाह, आत्म संयम, शिक्षा आदि जनसंख्या कम होने के कारण हैं तथा उस देश के खाद्यान्न को प्रभावित कर सकता है, जनाधिक्य होने के कारण खाद्य-सामग्री में कमी आने की सम्भावनाएँ हैं, परन्तु किसी-न-किसी देश में कभी-कभी जनसंख्या वृद्धि से उस देश की खाद्य-सामग्री में अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। भारत एक गर्म प्रधान देश है, इसलिए इस देश का जनाधिक्य होना स्वाभाविक है। इस देश की जनसंख्या में दिनानुदिन वृद्धि हुई है। परिणामतः इस देश के साथ-खाद्य सामग्री पर प्रभाव पड़ा है। आज सरकार के अथक प्रयास से जनसंख्या में कमी लाने का प्रयास किया गया है तथा सफलता भी मिल रही है और आज यही कारण है कि सम्पूर्ण भारत देश की जनसंख्या में जन्म-दर और मृत्यु-दर में प्रभाव पड़ा है।

झारखण्ड के कुड़मी की जनसंख्या भी भारत की जनसंख्या के अनुरूप बढ़ी है। 1931 में भारत सरकार ने अन्तिम बार जातिगत सर्वेक्षण कराया, जिसमें छोटा नागपुर के कुड़मियों की जनसंख्या 6,60,000 बताया गया है।

डबल्यू० जी० लैसी सेंसस आफ इण्डिया, 1931, यदि यह मानकर चलें कि 6,60,000 कुड़मियों में यदि बाहर के कुर्मी, 60,000 हों तो भी छोटा नागपुर के कुड़मियों की संख्या 6 लाख रही होगी। उस समय बाहर के कुर्मी का आना धीरे-धीरे का हो रहा था, परन्तु बाद में बहुत सारे पहुंच गये तथा बस गये।

छोटा नागपुर के वर्तमान कुड़मियों की जनसंख्या को जानने के लिए भारत की जनसंख्या का जो जन्म-दर और मृत्यु-दर है, उसको आधार मानकर ही निकाला जा सकता है। विभिन्न :ार्थशास्त्रिगें एवं गणितज्ञों ने अपना-अपना विचार दिया है। इसी आलोक में अर्थशास्त्री रूठार दत्त तथा के० पी० एम० सुन्धाराम द्वारा लिखित इंडियन इकोनामी में दिखाया है कि भारत की जनसंख्या का जन्म-दर और मृत्यु-दर किस तरह प्रभावित हुआ है। यथा—

भारत में औसत वार्षिक जन्म-दर और मृत्यु-दर

डिकोड	जन्म पर 100	मृत्यु पर 100
1891-1900	45.8	44.4
1901-1910	48.1	42.6
1911-1920	49.2	48.6
1921-1930	46.4	36.3
1931-1940	42.2	31.2
1941-1950	39.9	27.4
1951-1960	40.0	18.0
1961-1970	41.2	19.4
1971-1980	37.2	15.0
1985-1986	32.6	11.1
1989	30.5	10.2
1992	29.0	10.0

ऊपर के टेबुल में भारत की जनसंख्या का जन्म-दर और मृत्यु-दर घटते हुए क्रम में दिखाया गया है, परन्तु औसत में संख्या बढ़ती जाती है। मान लिया जाए कि 1931 के जनगणना के अनुसार छोटा नागपुर की कुड़मियों की संख्या 6,60,000 थी तो उस आधार पर आज यदि 1992 की जनगणना की हैं तो उस समय जन्म-दर 29.0 प्रति हजार में था तथा मृत्यु-दर 10.0 था। उस हिसाब से जन्म-दर 19,140 होता है, इसे औसत 6,60,000 में जोड़ने से 6,79,140 होता है तथा मृत्यु-दर 66,000 होता है जो औसत में घटा देने पर लगभग 6,72,546 के आस-पास इनकी संख्या होती है। अत: वर्तमान में छोटा नागपुर के कुड़मियों

की संख्या 6,72,546, 1992 की जनगणना के अनुसार होगी। डा० विनय महतो के अनुसार 1941 के आदम सुमारी के अनुसार बंगाल में कुड़मियों की जनसंख्या 1,94,652 तक पहुँच गई थी, जिसमें से 86,711 अकेले मिदनापुर जिला की ही थी। इसी समय मानभूम जिला में उनकी जनसंख्या 3,27,068 थी। इन आंकड़ों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुड़मियों की आबादी का केन्द्र पश्चिम बंगाल का पश्चिमी क्षेत्र से लेकर वर्तमान छोटा नागपुर का पूर्वी क्षेत्र में था। इस बीच में एक परिवर्तन हुआ, जिससे मानभूम का एक अंग पश्चिम बंगाल में पुरुलिया जिला के रूप में शामिल हो गया। यद्यपि 1941 के बाद कुड़मियों के लिए अलग आदम सुमारी नहीं की गई फिर भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस बीच उनकी जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई। वर्तमान में यह आंकलन किया जाता है कि पुरुलिया एवं उससे संलग्न मिदनापुर जिला का झाड़ग्राम सब-डिवीजन उड़ीसा का मयूरभंज जिला एवं उसका संलग्न बिहार का सिंहभूम जिला की कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत कुड़मियों का है। (इण्डियन वेलफेयर सोसायटी, 1986—डा० विनय महतो)।

इसी तरह लखीकान्त महतो का एक बुकलेट 1991—दी प्रजेन्ट कंडीसन आफ दी कुड़मी ट्राइव्स अण्डर दी सोसियो-एकानोमिक पोलिटिकल एण्ड रीलिजन इम्पैक्ट आन छोटा नागपुर टु डे में प्रकाशित है कि—उस सुपरिचित एवं समरूपी क्षेत्र में जो दामोदर, स्वर्ण रेखा, कंसावती और बैतारीनि नदियों से घिरे हुए हैं, टोटेमवादी कुड़मी आदिवासियों की कुल जनसंख्या 70 लाख से भी अधिक है। (दी प्रजेन्ट कंडिसन आफ दी कुड़मी ट्राइव्स अण्डर दी सोसियो-एकानोमिक पोलिटिकल एण्ड रीविजन इम्पैक्ट ओन छोटा नागपुर टु डे, 1991-लखीकान्त)। इस तरह देखा जाय तो आज के समय कुड़मियों की जन-संख्या 70 लाख से भी अधिक है। झारखण्ड सरकार के ''ट्राइबल्स रिसर्च सेन्टर'' के सर्वे के मोताबिक झारखण्ड में कुड़मियों की संख्या ''संथालो'' के बाद दूसरा स्थान है। अतः कहा जा सकता है कि कुड़मियों की संख्या काफी है।

— — — —

अध्याय -3

कुड़मियों का इतिहास

किसी भी जाति या जनजाति का सही-सही यह अनुमान कर पाना कि कौन कहां से आया या वह यहीं का भूमि-पुत्र है या यह जोर देकर कहना कि ये लोग यहीं के हैं, शायद यह जवाब पूर्ण नहीं होगा। इसलिए कि लोग अपने आर्थिक संकट को दूर करने के उद्‌देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। आदिकाल में मनुष्य कन्द-मूल-फल-फूल खाकर जीवित थे, उस समय भी मनुष्य का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने-जाने का प्रचलन था, क्योंकि जब उस आस-पास के फल-फूल समाप्त हो जाते थे या खाद्य पदार्थ समाप्त हो जाते थे, तब वे दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान करते थे। इस तरह मनुष्यों का एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थानान्तरण निम्न प्रकार से होता है :

(1) प्राकृतिक आपदा के कारण

(2) खाद्य-सामग्री की कमी

(3) राजाओं द्वारा खदेड़े जाने या लड़ाई होने पर।

आज भी वही परम्परा मनुष्यों के बीच वर्तमान है। झारखण्ड के कुड़मी भी निश्चित रूप में कहीं-न-कहीं रहे होंगे, जो समय के चपेटों में आकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर निवास कर रहे हैं तथा यह कहना भी प्रासंगिक नहीं होगा कि वे लोग कहीं से आये ही हैं? लेकिन जो स्रोत मिलता है तथा स्रुति परम्परा के आधार पर जो लोककथा या लोकगीत पाया जाता है, उसमें साफ झलकता है कि कुड़मी का भी आगमन एक घटना-चक्र के तहत हुआ।

झारखण्ड के कुड़मियों के सन्दर्भ में लिखित प्रमाण नहीं रहने के कारण बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि कोई सटीक प्रमाण नहीं मिलने के कारण तथा उसमें गहरायी तक जाने के लिए जिस स्रोत की आवश्यकता होती है, उसके अभाव के कारण असुविधा होती है।

आज तक किसी विद्वान ने कुड़मियों के बारे में कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़ा, या जितना भी छोड़ा, वह अपर्याप्त है। कुड़मियों के बारे में विद्वानों का मत है कि कुड़मी विभिन्न स्थानों से यहां आये हैं। किसी ने कहा—कुड़मी महाराष्ट्र से आये, किसी ने कहा—गुजरात से तो किसी ने कहा—सिन्ध, बलूचिस्तान से तो किसी ने कहा मध्य बंगाल में ही ये लोग रहते थे। इधर-उधर फैल जाने के कारण कुछ शब्दों का मेल दिखाई देता है तथा बोलने की शैली बंगला की तरह जान पड़ती है। साथ ही साथ इन सम्भावनाओं से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुड़मी आदिकाल से यहीं रहते थे, क्योंकि खेतिहर होने के कारण कुड़मियों ने ही जंगल-झाड़ साफ किये हैं तथा खेती योग्य जमीन बनायी है। और कृषि संस्कृति को विकसित किये हैं।

कुड़मी का साधारणतः किसान यानि खेती करने वालों में से ही इनका परिचय मिलता है, इसलिए ये नदी के किनारे ही अधिकतर बस जाना पसन्द करते हैं। इसलिये एक प्रचलित कथा है—''जंदे-जंदे पानिक सत तंदे-तंदे कुड़मिक जठ'' जहां पानी की बहुतायत रहती है। ये खेती करने में काफी निपुण रहे हैं, इसलिए इनको यदि ''पृथ्वी का सीना चीर, दूध निकाल कर पीने वाला'' इन्सान कहा जाय तो कोई अप्रासंगिक नहीं होगा, क्योंकि ये मेहनतकश इन्सान हैं, जहां भी ये रहे थे, वहां भी यही कर्म किये होंगे, क्योंकि वहीं से कुड़मियों के घरों पर जो पारम्परिक हथियार या औजार दिखाई देता है, उसमें किसी प्रकार की आधुनिकता नहीं मिलती। इसलिए यह तो स्पष्ट है कि जहां ये थे, वहीं खेती ही इनका मुख्य पेशा था।

विद्वानों का मत है कि महाराष्ट्र से यहां आये हैं। यह भी मानकर चलता है कि महाराष्ट्र में भी कुड़मी हैं, परन्तु वहां क्षत्रिय कुर्मी हैं जो अपने आपको शिवाजी के वंशज मानते हैं। हो सकता है उसी का एक अंश इस झारखण्ड क्षेत्र में आकर बस गया है, परन्तु जहां तक मेरा अपना विचार है कि यदि महाराष्ट्र से आये होते तो मराठियों की छाप अथवा कोई-न-कोई प्रमाण उदाहरण स्वरूप रहता, चाहे वह शारीरिक बनावट के साथ अथवा रहन-सहन, खान-पान के साथ, परन्तु ऐसा कोई ठोस लक्षण परिलक्षित नहीं होता है। मानव शास्त्री कुड़मियों को शारीरिक दृष्टिकोण से बनावट में जो मेल करने का प्रयास किया

है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता, लेकिन संस्कार-संस्कृति की दृष्टि से भी उनसे भिन्न हैं।

दूसरे प्रमाण लोककथा के अनुसार जो पूरे कुड़मी समाज में व्याप्त है, उसके अनुसार दिल्ली के सल्तनत में मुसलमानों का आधिपत्य था। सम्पूर्ण उत्तर भारत में तत्कालीन मुसलमान राजा का राज्य था, जो अपनी इच्छानुसार राज्य का संचालन करते थे तथा हरम-प्रथा का प्रचलन था, जो भी अच्छी औरत या लड़की पर नजर पड़ती, उसको हरम में उठा ले आते और इन्हें बेइज्जत किया जाता था। कुड़मी अपनी इज्जत-आबरू बचाने हेतु यदि जान भी देना पड़े तो देते हैं। यहीं से कुड़मियों में लोककथा का एक अध्याय इतिहास में जुड़ता है कि "एक कुड़मी समाज की खूबसूरत लड़की थी, जिसको देखकर मुसलमान राजा की नजर उस पर पड़ी तब तक शायद कुड़मी दिल्ली तक पहुंच चुके थे। यह घटना 1200-1300 के आस-पास घटी थी। कुड़मी ने अपनी इज्जत बचाने हेतु उस राजा का राज्य छोड़ दिया और रातों-रात भागते हुए गंगा नदी पार करते हैं तथा पीछे से मुसलमान सेना पीछा करती हुई आ रही थी। अंततोगत्वा ये संथाल परगना में प्रवेश करते हैं, जहां सरहुल के उपलक्ष्य में सुअर का मांस लोग खा रहे थे, वहीं कुड़मी शामिल हो गये। अंत में मुसलमान तौबा-तौबा करते हुए वापस चले गये और कुड़मियों का रहना संथाल के साथ भाईचारे का हुआ।" यहां तक कि वे एक ही मां के दो पुत्र माने जाने लगे। चूँकि मुसलमानों का अत्याचार था इसलिए हरम से बचने के लिए अपने सौन्दर्य को नष्ट करने हेतु पूरे शरीर में लड़की का गोदना करना एक परम्परा हो गया। कुड़मी स्त्रियों में फारसी अंकित आभूषणों का प्रयोग भी इस नाम के साथ इनके संबंध को बतलाता है। वहीं से कुड़मियों में बाल-विवाह का प्रचलन शुरू हुआ ताकि वह लड़की किसी दूसरे घर की सम्पत्ति मानी जाए। क्योंकि मुसलमान विवाहिता पर अत्याचार नहीं करते थे।

यह लोककथा भी प्रासंगिक है कि यहां से भी कुड़मियों का एक अध्याय जुड़ा है। जो लोककथा के माध्यम से अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे ही प्रमाणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि कुड़मी सर्वप्रथम कहां थे, जो कुड़मी समाज का एक अति विशिष्ट तथा धार्मिक उत्सव 'करम' है। भादो एकादशी के पहले 'जावा' उठाया जाता है तथा ग्यारहवें दिन के बाद करम राजा, जिसको ठाकुर, शिव आदि कहते हैं, का उत्सव होता है। उसी उपलक्ष्य में गाना गाया जाता है तथा अनेक लोकगीतों में भी विभिन्न जगहों का उल्लेख मिलता है जो स्रोत का काम करता है। फिलहाल लोकगीत के माध्यम से तथा लोककथा ही एक ऐसा प्रमाण सामने खड़ा है, जिससे इतिहास परिलक्षित होता

है। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत दिये हैं, परन्तु किसी-न-किसी प्रमाण को आधार मानकर ही दिये हैं। इस सन्दर्भ में एक लोकगीत का उदाहरण द्रष्टव्य है :

खिलअ जे खेते देउरा
बकलि ना चरे,
से ह देखि, देउरा चलल पाराए, से ह देखि॥
तहें जे जाबे देउरा मालंच देसे
हामरिके देउरा संगे ले ले जाबे, हामरिके॥
हामरिका देसे भउजि सिसिरअ बहुत
भिंजि जाताउ भउजि साड़ि संदेश॥
भिंजे देहि भिजे देहि, साड़ि संदेश
घारे आहि, दसर साड़ि-घारे आहि॥
किया खाबे भउजि किया पिंधबे
काके देखि भउजि बांधवे दिल॥
दूध-भात खाउबँ साड़ि पिधबँ
तके दिखि देउरा बाँधव दिल॥
खाएके देबो भउजि पिंधेके देबं
निहि देबं टिकलि सिन्दुर, निहिल देबं।।

इस लोकगीत के माध्यम से यह उजागर होता है कि कुड़मियों का निवास स्थान मालंच देश में रहा होगा, जो सम्भवतः उत्तर भारत के क्षेत्र में, जहां शीत (शिशिर) अधिकांश पड़ता है। वहीं उनका निवास-स्थान रहा हो तथा उनकी संस्कृति विकसित रही होगी एवं लोग सम्पन्न थे। साथ ही साथ खेती भी होती थी। इसलिए शब्दों का प्रयोग तथा जगहों का प्रयोग हुआ है। तत्पश्चात् अब सिन्धु घाटी सभ्यता को आर्यों द्वारा नष्ट कर दिया गया तब कुड़मी यहाँ से गुजरात राज्य में जाकर बस गये होंगे। ऐसा ही प्रमाण पुनः मिलता है कि पश्चिम बंगाल के करम उत्सव के उपलक्ष्य में जो लोककथा का प्रचलन है, वह गुजरात के राजा के शिकार खेलने से लेकर करम के दो डालों से संबंधित है। छोटा नागपुर संथाल परगना में सिर्फ दो भाइयों से शुरू होता है, जो एक करमा तथा दूसरा धरमा थे, परन्तु पश्चिम बंगाल और उड़ीसा के कुछ भागों में गुजरात के राजा से प्रारम्भ करते हैं, इसलिए राजा का कुड़मी वंश में जन्म लेना या कुड़मी वंश का होना निश्चित है। अतः यह भी प्रमाण साक्षी के रूप में खड़ा है कि कुड़मी संभवतः सिन्धु घाटी में रहे हैं, क्योंकि सिन्धु घाटी की सभ्यता में

जिस बैल का चिह्न मिला है तथा दाग दिया गया है, कुड़मी भी अपने-अपने गोत्र के अनुसार बैलों को दागते हैं, जिसको 'चिलम दाग' कहते हैं। साथ ही बैलों को, भैंसा को पूजते थे इसका भी प्रमाण मिलता है जो आज कुड़मी बैलों और भैंसा की पूजा करते हैं। (प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन-सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ० 19)।

इसके अलावे बच्चों का जो खेल कुड़मी समाज में खेला जाता है, यह ''हाउवा हापा'' जिसमें बच्चों को मचान बनाकर दो व्यक्ति या दो लड़का एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाते हैं, इसको हम अपने व्यक्तिगत विचार से ''हाड़ा-छुपा'' शब्द से भी व्यक्त कर सकते हैं, जिसको ऊंची-नीची जमीन से जाना जाता है, क्योंकि कुड़मी ऊंची-नीची जमीन से जाना जाता है, क्योंकि कुड़मी ऊंची-नीची जमीन को समतल कर खेती करना भी जानते थे और सिन्धु घाटी के मुख्य दो नगरों में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में ये लोग खेती करते रहे होंगे, क्योंकि आज कुड़मी परती जमीन और ऊबड़-खाबड़ जमीन को समतल कर खेती करना उनकी आम बात है।

इस तरह के विचार से कुड़मियों का एक स्थान से दूसरे स्थानों पर आना प्रायः दो तरफ से हुआ होगा। कुड़मियों का एक मार्ग दक्षिण की ओर जाता है दूसरा पूरब की ओर, परन्तु जिस संख्या में दक्षिण की ओर गया उसका प्रमाण सिर्फ नागपुर तक मिलता है, इसलिए कहा गया है ''सिख-सिखर नागपुर आधा-आधी खड़गपुर''। यह कथा भी कुड़मी समाज में प्रचलित है, परन्तु जिस अनुपात में इनका फैलना पूरब की ओर हुआ, उतना पश्चिम में नहीं हुआ प्रतीत होता है। यदि लोकगीतों को आधार मान कर चलें तो यह भी एक प्रमाण मिलता है कि जिस शीत प्रधान देश का जिक्र हो रहा है, उससे उत्तर भारत का ही अनुमान किया जा सकता है।

''पामीर'' उपत्यका में एक नदी जो पामीर के पठार से निकलती है, उसका भी नाम 'कुरम' नदी है। सम्भवतः कुड़मी 'कुरम' नदी के किनारे रहे होंगे। 'पामीर' का राजा मंगोल में विवाह करता है तथा मंगोल जाति के लोग ब्रह्मपुत्र नदी घाटी होकर भारत में प्रवेश करते हैं। इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि पामीर का राजा कुड़मी रहा हो तथा उसने उससे विवाह-संबंध स्थापित किया हो, जो सम्भवतः कुड़मी रहा हो। यही मंगोल प्रजाति के लोग जब भारत में प्रवेश करते हैं तथा यहां अपना वर्चस्व बनाये रखते हैं। परिणामस्वरूप कुड़मी के खून में मंगोल प्रजाति का मिश्रण दिखाई देता है या यह कहा जा सकता है कि यही मंगोल प्रजाति के लोग ही कुड़मी रहे हैं।

कुड़मी को मंगोलाएड प्रजाति का भी माना जाता है, जो भारत में प्राचीन काल में ब्रह्मपुत्र की घाटी होकर प्रवेश किये थे, परन्तु ये यहां अधिक फैल नहीं सके, जिस तरह से आर्य लोग फैलते गये। इस तरह मंगोलाएड प्रजाति के लोग फैल नहीं सके। कुड़मी घर के बच्चों को जब ''तातरा'' दिया जाता है, जन्म के इक्कीस दिन के बाद जलाए हुए हंसुआ से पेट को दागा जाता है। तब पेट का सिरा हरा दिखाई देता है जो सिर्फ संथाल और कुड़मी में ही यह लक्षण पाया जाता है। इसलिए संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि सम्भवत: कुड़मी मंगोलाएड प्रजाति रेस के हैं। (कुड़माली चारी : वसन्त कुमार मेहता, पृ० 96)

यदि यह मान लिया जाय कि मंगोल प्रजाति से प्रभावित है, तब इनका स्थानान्तरण नहीं हुआ है वरन् ये यहां के मूल निवासियों का एक हिस्सा माना जा सकता है, क्योंकि मंगोल प्रजाति के लोग बंगाल और उससे सटे राज्यों में ही इसका वर्चस्व था। फिर भी ऐसा कहना इसके प्राचीन इतिहास को अधूरा छोड़ना है, इसलिए आधारभूत जो प्रमाण पाये जाते हैं, चाहे वह लोककथा हो या लोकगीत। यही एकमात्र प्रमाण स्वरूप खड़ा रह सकता है। यहां तक कि शारीरिक बनावट के दृष्टिकोण से भी प्रभावित किया जा सकता है।

कुड़माली लोकगीत के माध्यम से यह अनुमान किया जाता है कि कुड़मी जहां 'चन्दन' पेड़ होता है वहीं शायद रहा हो, इसलिए लोकगीत में कहा गया है कि 'काहां भुली पाए गो बाबा चंदन काठेर पीढ़ा'। इसका मतलब भारत में जिस क्षेत्र में चन्दन का पेड़ मिलता है, वहीं उनका वास स्थान रहा होगा अथवा केरल, कर्नाटक राज्य को ही चन्दन राज्य कहा जा सकता है। सम्भवत: कुड़मी का एक भाग पश्चिम उत्तर से होकर केरल में गया होगा, परन्तु लोकगीत और लोककथा के प्रत्येक शब्द को प्रमाणस्वरूप मान कर चलें तो शायद यह भी प्रमाण पूर्ण नहीं होगा। लोककथा या लोकगीत सुनकर भी कभी-कभी लोगों द्वारा रचा जाता है, इसलिए उतना इस पर निर्भर हम रहना नहीं चाहते। क्योंकि लोकगीत-लोककथा समय, काल परिस्थिति अनुसार बदल जाता है तथा इसका वास्तविक रूप कभी-कभी खोज पाना कठिन होता है।

जब भी किसी जाति का एक जगह से दूसरी जगह पर स्थानान्तरण होता है तो उसके साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कुठाराघात हुआ करता है। मनुष्य जब खानाबदोस की जिन्दगी जी रहे थे, उस समय कोई स्थायी निवास-स्थान नहीं हुआ करता था। फलत: जहां चाहा वहीं जा कर रह सकता था, परन्तु जब पशुपालन युग के बाद कृषि युग आता है तो धीरे-धीरे मनुष्यों का निवास-स्थान स्थायी हुआ।

मनुष्यों के स्थानान्तरण से विकसित होने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि जब कोई मनुष्य स्वेच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, तब अपने विकास के ख्याल से जाता है, क्योंकि जीव मात्र में ही यह स्वभाव है कि यह अपने भविष्य को विकसित करने के लिए ही स्वदेश छोड़ता है। साथ ही यह देखा गया है कि जो जाति जितना स्थानान्तरित हुआ है, उसका विकास उतना ही अधिक हुआ है। जिस जाति का स्थानान्तरण नहीं हुआ है, वह अविकसित है। इसलिए झारखण्ड के कुड़मी अन्य मूल निवासियों के साथ झारखण्ड में रह गये। फलतः यहां के अन्य जनजातियों की भांति कुड़मियों का भी विकास नहीं हो पाया है (तब अपने विकास के विचार से जाता है, क्योंकि जीव मात्र में ही यह स्वभाव है कि वह अपने भविष्य को विकसित करने के लिए स्वदेश छोड़ता है) कुड़मी भी आदिवासी गोष्टी के लोग हैं, जिसमें एच० एच० रिजले ने अपने कास्ट एंड ट्राइब्स में विस्तारपूर्वक चर्चा किये है। कुड़मी अन्य जनजाति के साथ सदियों से हैं इसलिए इन्हें भी प्रिमिटिभ ट्राइब्स, एबोरजिनल ट्राइब्स, इण्डिजिनियस पियुन्स के साथ ही रखा गया परन्तु 1950 में अनुसूचित करने के समय छुट गये। फलस्वरूप आज आदिवासी कुड़मी का स्तीत्व, खतरे में है। झारखण्ड से वे अनुसूचित करने के लिए अभी प्रस्ताव भेजा है। झारखण्ड के कुड़मियों का कहीं से आने का प्रमाण सटीक नहीं है, परन्तु यहां से दूसरी जगह पर जाकर बस जाने का प्रमाण है। यह भी घटना-चक्र के तहत हुआ है, चाहे वह अभाव अथवा विकसित होने के विचार से किया गया हो। ऐसे तो जीवन-यापन हेतु लोग आज सम्पूर्ण देश में फैले हुए हैं। देश से विदेश चले जाते हैं, परन्तु उसको स्थानान्तरण नहीं कहा जा सकता है। इसलिए कुड़मियों का स्थानान्तरण संभवतः नहीं हुआ है यदि नहीं हुआ है तो यहां दो प्रश्न उठ खड़े होते हैं कि क्या कुड़मी झारखण्ड के मूल निवासी हैं? या क्या यहां इनका मूल निवास स्थान रहा है? इन प्रश्नों के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि भारत में सर्वप्रथम निग्रीटो, ऑस्ट्रिक, किरात, द्रविड़ तब आर्य लोग आए।—"भाषा और समाज-रामविलास शर्मा" इस क्षेत्र में अनार्य लोग थे। असुर आदि नामों से जाने जाते थे। दूसरे शब्दों में इन्हें कोल, किरात आदि नामों से भी चिन्हीत किया जाता था। आर्यों के आने के पहले इनकी अपनी संस्कृति थी, जिनका छाप अभी भी मौजूद है। यहीं अनार्यों को आर्यों द्वारा दास बनाने के क्रम में ये जंगलों और पहाड़ियों में छिप गये। फलस्वरूप इनकी अपनी भाषा और संस्कृति विद्यमान रही और यही जाति कालान्तर में करवट बदलने के पश्चात अपना छाप अपना अस्तित्व बचाये रखा। तब उन्हीं कबीलों में एक कबीला कुड़मी जाति भी रही है। इसलिए यहां के लोगों ने दासत्व का पद स्वीकार नहीं किया और प्राकृतिक

धर्म पर विश्वास करते रहे। 'रन बन, विजु वन, अरून वन, बाधा बन' झाँटि बन इनका निवास स्थल था।

युग परिवर्तन के साथ ही लोगों में आर्यों का प्रभाव पड़ा। कहीं-कहीं आस्तिक धर्म का प्रचलन दिखाई पड़ता है और छोटा नागपुर, संथाल परगना क्षेत्र में जो भी पौराणिक मंदिर या औजार है, यहां के कुड़मियों आदि निवासियों ने ही उनका निर्माण किये होगे, जिसे असुर कहे जाते थे। शरतचन्द्र ने इसको प्रमाणित करने की कोशिश की है कि छोटा नागपुर की संस्कृति सिन्धु घाटी सभ्यता की संस्कृति के समकालीन है। क्योंकि सिन्धु सभ्यता में शिवलिंग का पूजा (प्रोटोशिव) झारखण्ड के विभिन्न जगहों में शिवजी का मंदिर होना यह प्रमाणित करता है कि सिन्धु तथा झारखण्ड के लोग शिव के पुजारी अथवा शैव भक्त थे। (बिहार गजेटियर आफ इण्डिया : एन० कुमार, पृ० 38) इसलिए यह भी प्रमाण मिलता है कि ये भी समकालीन हैं जो सिन्धु घाटी से प्राप्त अभिलेखों का है। अतः इस संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता से कहीं झारखण्ड की सभ्यता प्राचीन थी। डिस्ट्रिक्ट गजेटियर रांची का मानना है—छोटा नागपुर में रह रहे प्राचीन असुरों का विस्तार भी व्यापक था तथा उनके गहने ताम्बे का हुआ करता था तथा वह युग पत्थर-युग के समकालीन माना जाता है और उस युग में रह रहे जनजातियों का रोजाना प्रयोग के आभूषण हुआ करता था। (डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ इण्डिया—एन कुमार, पृ० 7)

इसके साथ ही प्रमाणस्वरूप जो भी प्राप्त है, वह बसिया थाना में एक टीले से 21 कुल्हाड़ी तथा 5 कुल्हाड़ी खूंटी के सामने दरगामा से प्राप्त किया गया, जिससे यह पता चलता है कि यह ताम्र युग का है।

1915 में जे० जी० गोगिन ब्राउन ने पलामू और मानभूम जिलों से प्राप्त ताम्बे के वस्तुओं को जियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया को भेजा तथा यह रिपोर्ट किया कि यह नवपाषाणकालीन युग को प्रमाणित करता है। तथा सिन्धु सभ्यता से सैकड़ों वर्ष पुराने हैं।

इसलिए छोटा नागपुर से प्राप्त पौराणिक वस्तुओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सिन्धु घाटी सभ्यता से कम पुरानी नहीं है और इन सबका श्रेय यहां के जनजातीय लोगों को जाता है, जिन्होंने इस सभ्यता का निर्माण किया। उन वस्तुओं से उनका छाप परिलक्षित हुआ है।

अतः यह कहा जा सकता है कि यहां के कुड़मी कबीले भी इनमें रहे हैं। फलस्वरूप इनके साथ धुंधला-सा इतिहास है, जो कभी डाल्टन के

डिस्क्रिपटिव एथनोलाजी आफ बंगाल (1872) में तथा रिजले के ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ बंगाल में मिलता है।

इसीलिए यह जोर देकर कहा जा सकता है कि झारखण्ड के कुड़मी कहीं से आये नहीं वरन् इनका निवास-स्थान यहीं परम्परा से रहा है, जो अन्य जनजातियों के साथ सदियों से रह रहे हैं। यह प्रमाणिक तौर से स्पष्ट होता है कि कुड़मी संभवतः यहीं के अति प्राचीन निवासी हैं तथा यहां की कृषि संस्कृति को विकसित करने में इनका योगदान रहा है।

किंवदन्ती है कि कुड़मी राजा दामोदर शिखर के नाम से शिखर शब्द की उत्पत्ति हुई है। ऐसे तो पौराणिक राजाओं की उत्पत्ति ही विशेष प्रकार से होती थी, चाहे यह जंगल से लाया गया बच्चा हो तथा क़िसी के फल के रस से आशीर्वादस्वरूप प्राप्त हो। शिखर एक राजवंश की राजधानी क्रमशः झालदा, चाकेइलतड़ केसरगढ़, तेताकुपी, पंचकोट तथा काशीपुर में रहा है। कुड़मी का निवास-स्थान भी यहीं हो सकता है। क्योंकि इनकी बहुतायत संख्या इसी दायरे में व्याप्त हैं। इसलिए हम जोर देकर कह सकते हैं कि झारखण्ड की सभ्यता पर गहन अध्ययन किया जाय तो निश्चित रूप से सिन्धु सभ्यता, मेसोपोटेमिया सभ्यता, आदि से प्राचीन हो सकता है।

— — — —

अध्याय -4

कुड़मी की सामाजिक व्यवस्था

आदिम युग में मनुष्य जब जंगलों में रहता था तब पेट भरने का एकमात्र साधन फल-फूल, कन्दमूल था, यानि ''वन्य संस्कृति'' थीं। इसी परिप्रेक्ष्य में कुड़मी पांच वनों में अवस्थित थे—(1) रन-बन, (2) बिजु-बन, (3) बाघा-वन, (4) अरुन बन (5) झांटी बन। जब फल-फूल आदि का अभाव होने लगा तब ये जंगली जानवरों का शिकार करने लगे और उससे पेट भरने लगे। जिनका लक्षण अभी भी समाज में दिखाई पड़ता है। जब भी कोई सामाजिक अनुष्ठान होता है अथवा तीनों संस्कारों में (जन्म, विवाह एवं मृत्यु) मांस भक्षण अनिवार्य है। इसलिए आज भी कुड़मी समाज के लोग खस्सी मांस को ''शिकार'' नाम से व्यहृत करते हैं। साथ ही आदिम युग का प्रभाव अभी भी साफ झलकता है कि कुड़मी चूल्हे के आग में सीधे पका कर खाते हैं। धीरे-धीरे जब इसका भी अभाव हुआ तब झाड़-जंगल साफ कर सीधे कृषि युग में प्रवेश किए तथा स्थायी मकान घास-फूस का बनने लगा तत्पश्चात् ये पशु पालन करने लगे और इन्हीं पशुओं के माध्यम से कालान्तर में खेती-बाड़ी शुरू हुआ।

कुड़मी खेती करने का सामग्री(हल, जुआँट, मेइर, कारहा आदि) खुद अपने से निर्मित करते हैं तथा मकान बनाने के लिए लकड़ी का कांड़ बाता, मुधेइन, धारना, खुद तैयार करते हैं। इन लोगों ने अस्त्र-शस्त्र का भी निर्माण किया है। इसलिए इन सभी का छाप समाज में किसी न किसी रूप में मान्यता प्राप्त है और पूजनीय भी है।

लोककथा अथवा विश्वासानुसार कुड़मी जाति की अपनी सामाजिक व्यवस्था रही है। झारखण्ड की अन्य जनजातियों की ही तरह कुड़मी की अपनी व्यवस्था है। इसी सामाजिक व्यवस्था में कुड़मी जाति की सुरक्षा स्थायित्व तथा विकास की रीति-नीति निहित है। साथ ही साथ जाति के सभी लोगों को इसका पालन करना पड़ता है तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पालन करना कर्तव्य होता है। सब लोग गांव में एक साथ रहते हैं, सबका अपना मकान-मवेशी है, खेत-टांड और चल-अचल सम्पत्ति का बंटवारा भाइयों के बीच होता हैं। इसलिए शांतिपूर्ण जीवन के लिए उचित सामाजिक व्यवस्था अनिवार्य होता है।

स्तुति परम्परा के अनुसार जब कुड़मी जाति के लोग नया गांव बसाने जाते हैं, तब उस स्थान पर सूर्य देवता से जो कुड़मी का सबसे बड़ा देवता है, अनुमति ली जाती है। अगर सूर्यदेव अनुमति दे देते हैं तब वहां गांव के बसने में किसी प्रकार की मुसीबत नहीं आती है। सबसे पहले जिस जगह पर गांव बसाना चाहते हैं, वहां पर किसी साल के पेड़ के नीचे एक गड्ढा खोदा जाता है और उस गड्ढे पर सिन्दूर और अरवा चावल गिन कर डाल दिया जाता है, : सके बाद एक दीपक जलता हुआ छोड़ दिया जाता है, उसी समय सूर्यदेव से विनती करते हुए मंत्रोच्चारण करते हैं और बसने की अनुमति मांगते हैं और छोड़कर चले जाते हैं। दूसरे दिन पुनः जब वे लोग उस साल के पेड़ के नीचे आकर देखते हैं, यदि दीपक जलता रहा है और सिन्दूर के रंग में किसी प्रकार की बदलाव न आया हो तथा अरवा चावल जो गिन कर डाला जाता है, वह सही सलामत मौजूद हो तो यह विश्वास है कि भगवान ने हमें बसने की अनुमति दे दी है और एक-एक दो-दो व्यक्ति कर बसने लगते हैं तथा वही व्यक्ति ग्राम-पूजा भी बाद में करता है, जो पहली अनुमति लेता है। यह अधिकार उसका परम्परागत होता है। कुड़मी समाज का कोई दूसरा व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था के हिसाब से ग्राम-पूजा नहीं कर सकता है। यह उस व्यक्ति की पारम्परिक सम्पत्ति होती है और समाज के हर व्यक्ति को मानना पड़ता है। कुड़मी जाति ने जो सुरक्षा, धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा शांतिपूर्ण जीवन के लिए जो भी सामाजिक व्यवस्था स्थापित की है, वह इस प्रकार है—

(1) पितृ प्रधान समाज—कुड़मी समाज में पिता घर के मालिक होते हैं। सभी सम्पत्ति पर पिता का अधिकार होता है तथा मालगुजारी भी इसी के नाम से दिया जाता है। परिवार के बच्चों का गोत्र पिता का ही दिया जाता है, भले ही माता दूसरे गोत्र से आती हो, इसलिए कुड़मी समाज के लोगों में औरतों का गोत्र दो प्रकार का होता है—एक शादी के पहले का दूसरा शादी के बाद की पितृ-सम्पत्ति पर अधिकार उसके पुत्र का ही होता है, पुत्री का नहीं। चूंकि वह

शादी के बाद दूसरे के घर की हो जाती है। किसी कारणवश यदि लड़की का शादी-विवाह नहीं होता तब उसको पिता के घर रहने का पूरा अधिकार है और जीवन-यापन के लिए पूरा हक दे दिया जाता है, फिर भी उसको जमीन का हिस्सा नहीं मिलता। यदि कारणवश उस परिवार में कोई लड़का का जनम नहीं होता तब उस लड़की के पिता का पूरा हक होता है कि वह अपनी बेटी को जमीन अथवा सारी सम्पत्ति उसके नाम कर दे। इस प्रथा को कुड़मी समाज में 'घर दामाद' कहा जाता है। परन्तु कुड़मी कॉस्टमरी लॉ में यह अधिकार नहीं है कि दामाद को सम्पत्ति दे दे। वह सम्पत्ति अपने भाई-भैयाद का ही होता है।

पितृप्रधान का धार्मिक आधार—कहा जा चुका है कि कुड़मी समाज पितृप्रधान होता है तथा अधिकार भी पुरुषों का ही होता है। जब स्त्रियां शादी के बाद नए घर में आती हैं, तब वह भी उस घर का स्थायी सदस्य हो जाती है और अपने पति की सम्पत्ति का पूरा हक उसके मरने के बाद तक रहता है। यदि स्त्री विधवा हो जाती है, तो उसकी जायदाद कोई नहीं ले सकता। यदि उसका कोई पुत्र हो तो उसके नाम कर देने का पूरा अधिकार रहता है। यदि पुत्री ही सिर्फ हो तो वैसी हालत में वह घर दामाद ला सकती है, जिसने सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार उसकी पुत्री के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिया हो। यदि वह स्त्री संतान होने के पूर्व ही विधवा हो गयी हो तो दूसरे के साथ वह वैवाहिक संबंध स्थापित कर सकती है, जिसको कुड़मी समाज में 'सांघा' कहा जाता है। यदि यह आजीवन विधवा बन कर पहले पति के घर ही रहती है, तब उसको उसके पति का हिस्सा पर पूर्ण अधिकार रहता है।

पति-पत्नी का बराबर हिस्सा—कुड़मी समाज में स्त्री और पुरुष का बराबर हिस्सा रहता है। जितना अधिकार पुरुष का है उतना ही अधिकार स्त्री का भी रहता है। कुड़मी समाज की कोई भी स्त्री अपने पति से नीची नहीं मानी जाती है। वह हर दृष्टि से पुरुष के बराबर होती है। पत्नी को भी अपने पुरुष के साथ हर काम में हाथ बंटाने का हक है तथा पुरुषों के साथ स्त्री हक के लिए लड़ सकती है। केस-मुकदमा तथा पंचायत बुला सकती है। यदि ससुराल वाले किसी स्त्री पर अत्याचार करते हों अथवा उसको प्रताड़ित करते हो तो यह जिम्मेवारी पूरे कुड़मी समाज पर आता है और उसको परम्परानुसार उस स्त्री का हक अथवा रहने-खाने की सुविधा उसके ससुराल वालों से प्रदान किया जाता है। यदि स्त्री दूसरी जात पर निर्भर करती हो तो ऐसी हालत में समाज उसको बुरी नजर से देखते हैं। साधारणतः ऐसी स्त्री रखैल के रूप में रखी जाती है, जिसको कुड़मी समाज के लोग खवासिन के नाम से जानते हैं। जाहिर है, ऐसी पत्नी को बगैर शादी के लाया जाता है और समाज की ओर से अनुमति भी मिल

जाती है। तत्पश्चात् पुरुष उस स्त्री को अपनी पत्नी बना सकता है, नहीं तो समाज उन दोनों को गांव से निकाल देते हैं और उनके लिए कुआं-पोखर बंद कर दिया जाता है, परन्तु उस व्यक्ति को भी यह हक होता है कि उसे अपनी पत्नी स्वीकार करे तथा उससे उत्पन्न भावी संतान का हक उसके जायदाद पर रहे। अन्ततोगत्वा उससे उत्पन्न बच्चों का हक उसके पिता की सम्पत्ति पर होता है।

उस स्त्री को मात्र लड़की ही उत्पन्न हुई हो तब उसको जायदाद के किसी भी हिस्से पर शादी के बाद दखल नहीं दिया जाता। परम्परानुसार ऐसा तब करता है जब उसका काम एक औरत से नहीं चलता, क्योंकि कुड़मी समाज में दूसरी शादी का प्रावधान नहीं है, परन्तु आवश्यक कारणों से रख सकता है तथा उस स्त्री का हक पूरा मालकिन का होता है एवं घर की सम्पत्ति उसी के हाथों रहती है। यदि पहली पत्नी भी है तब उसको चार आना हिस्सा मिलता है। अतः घर को उगाना-डुबाना उसी का काम है। (खड़िया धर्म और संस्कृति का विश्लेषण) इसमें भी वही परम्परा है जो खड़िया समाज में प्रचलित है।

निषेध—परम्परानुसार कुड़मी समाज की स्त्रियों पर कुछ निषेध का भी पालन किया जाता है। कुड़मी समाज की स्त्रियों का निषेध-पालन का अर्थ यह नहीं कि उसको अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं अथवा हीन माना जाता है।

सामाजिक अनुष्ठान में स्त्रियों को सामने नहीं आने दिया जाता, क्योंकि वह शादी के बाद दूसरे की होती है। इस तरह का रिवाज खड़िया जाति में भी होता है। (खड़िया धर्म और संस्कृति का विश्लेषण : पीलूस कुल्लू एस० जे०)

निषेध में जैसे खेत में हल चलाना, हल छूना, घर के ऊपर छप्पर पर चढ़ना, बीज बोना आदि कुड़मी समाज की स्त्रियों के लिए निषिद्ध है। अगर किसी स्त्री का पति स्वर्गवास हो गया हो अथवा उस घर में कोई पुरुष न हो तो ऐसी स्थिति में उन्हें नौकर रखना पड़ता है या अपने सामने के रिश्तेदारों अथवा किसी भी पुरुष के माध्यम से काम सम्पन्न कराना पड़ता है।

कुड़मी समाज की स्त्री एक-दूसरे को सिन्दूर की पोटली भी नहीं पकड़ाती। अगर अपना पति हो तो उसको पकड़ा सकती है, परन्तु अपने पति के अलावे किसी भी गैर पुरुष को सिन्दूर का डिब्बा हाथों-हाथ नहीं देती, जमीन पर रख देती हैं।

सिन्दूर के साथ तो विश्वास अपने पति की उम्र से है तथा मानती है कि उसका पति उसे एक बार सिन्दूर लगाया जिससे वह उसका अपना हो गयी अथवा उसके वंश की हो गयी। यह प्रेम-बन्धन पति और पत्नी का आजीवन रहे और जिसको देख कर पति खुश हो जाए। कुड़मियों के धार्मिक विश्वास के

अनुसार अगर विवाह पश्चात् कोई स्त्री रोज सिन्दूर लगाती हो तो उसके पति की उम्र लम्बी होती है।

दर्शन—ऊपर लिखित जिन निर्णयों की जिक्र की गयी है, जैसे—हल चलाना, बीज बोना और खपरैल चढ़ाना, ये तीनों कार्य संतानोत्पत्ति के कार्य अथवा सम्भोग के प्रतीक है। छत और खेत को स्त्री का प्रतीक माना जाता है और बीज बोना अथवा जोतना सम्भोग का प्रतीक माना जाता है तथा इसी तरह हल को पुरुष के जनेन्द्रिय का प्रतीक माना जाता है, जिससे सृष्टि होती है। अगर पत्नी हल चलाये तथा बीज बोये तो यह भावना जागृत होती है कि स्त्री-स्त्री के साथ सम्भोग करने की क्रिया कर रही है, जिससे फल अथवा विश्व की सृष्टि नहीं हो सकती है।

कुड़मी समाज की लड़की को साइकिल पर सवार होना अथवा घुड़सवारी करना निषिद्ध है। ऐसी लड़की को समाज के लोग दूसरी नजर से देखते हैं तथा यह कहते हैं कि लड़की अब मर्दों की तरह साइकिल सवारी करती है। अतः उसे 'मरदमुही' कहा जाता है, जैसे खड़िया जाति का विश्वास है कि उससे बच्चा उत्पन्न नहीं होता, इसलिए शादी नहीं करते, परन्तु कुड़मी समाज में यह विश्वास है कि उसका लक्षण पुरुष जैसा है, इसलिए शादी करने से कतराते हैं, चूंकि समाज के लोग उसके प्रति विभिन्न प्रकार की अफवाहें फैलायेंगे। शिकार के हथियार पर कुड़मी समाज की स्त्रियों का निषेध नहीं है, पर कभी-कभी व्यक्ति शिकार खेलने जाता है तो उसके हथियार को औरतें हाथ नहीं लगाती हैं, क्योंकि उसकी जो शक्ति अथवा गुण रहता है, वह समाप्त हो जाता है, इसलिए पुरुषों के हथियार, जिससे शिकार किया जाता है, उसको छूने नहीं दिया जाता, साथ ही साथ जब यह शिकार में निकलता है, तब स्त्रियों का दर्शन होना अशुभ माना जाता है, इसलिए गांव से निकल कर एक कंटीली झाड़ी को पत्थर अथवा ढेला के ऊपर दबा दिया जाता है, इससे विश्वास होता है कि जो बुरी नजर उसके साथ आ रही है, वह वहीं समाप्त हो जाए। कहीं-कहीं लोग पेशाब भी करते हैं। यदि कंटीली झाड़ी लौटने तक अपने स्थान पर बना रहा तब यह माना जाता है कि शिकार अथवा कार्य की सिद्धि अवश्य ही सम्भव है, इसलिए शिकार से लौटने के बाद कोई-कोई उसको अवलोकन करते हैं, यदि उसके ऊपर ढेला हट गया, तब यह माना जाता है कि अशुभ चीज उन्हें पीछा किया तथा कार्य को सिद्ध होने से रोका। इसलिए यह विश्वास है कि शिकार के समय वह स्त्रियों का मुंह नहीं देखते।

शिकार के हथियार को कुड़मी समाज की स्त्रियां छू सकती हैं, उसमें किसी प्रकार का निषेध नहीं है। स्त्रियां शिकार खेल सकती हैं। कुड़मी समाज

में स्त्रियों का शिकार खेलना परम्परा थी, परन्तु समाज में ऐसे परिवर्तन जिससे परम्परागत संस्कार को समाज में छोड़ते गये हैं, परन्तु अभी भी स्त्रियों का शिकार खेलने का प्रमाण कुड़मी समाज में मिलता है, जिसको हम 'खुखड़ा उड़ा' से जानते हैं। यह खुखड़ा उड़ा दुसू से भी संबंधित माना जाता है। खुखड़ा उड़ा में लड़कियां मुर्गी को उड़ा देती है और उसको डंडा-लाठी, तीर अथवा किसी भी हथियार से मारती है, जो लड़की उस मुर्गी को मारने में सक्षम हुई वही उस मुर्गी को ले जा सकती है।

जसिपुर (उड़ीसा) में यह खुखड़ा उड़ा मर्दों के बीच सम्पन्न होता है। दो-चार गांव के लोग मिलकर चंदा एकत्रित करते हैं तथा मुर्गी खरीदी जाती है। मुर्गी जिसने अभी तक एक बार भी अण्डा न, दिया हो, ऐसी मुर्गी को खरीद कर एक निर्दिष्ट स्थान पर ले जाया जाता है और सूर्य भगवान का आह्वान कर 'आखाइन' माघ का पहला दिन छोड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् चार-पांच गांवों के लोग उसको पकड़ने का प्रयास करते हैं, जो भी व्यक्ति उस मुर्गी को पकड़ने में सक्षम होता है, चाहे वह जिस गांव का हो, उसको राजा उस वर्ष के लिए मनोनीत किया जाता है।

इस तरह कहा जाता है कि कुड़मी समाज में शिकार का प्रचलन था, परन्तु अभी उसका प्रमाण कहीं-कहीं मिलता है। शिकार खेलने में निषेध नहीं है, परन्तु मर्दों के शिकार खेलने के समान पर हाथ लगाना अथवा छूना निषेध है, क्योंकि उसमें जो गुण विद्यमान रहता है, उस स्त्री के स्पर्श से समाप्त हो जाता है अथवा जो शक्ति रहती है, वह समाप्त हो जाती है। ऐसी लोगों की धारणा है कि जिस प्रकार औरत पुरुष के हल को नहीं छूती, उसी प्रकार शिकार के हथियारों को भी नहीं छूती। यह आधुनिक समाज की छाप परिलक्षित होती है वरन् औरत-मर्द दोनों ने एक साथ रहकर जंगल में निवास किये हैं, जानवरों के साथ लड़ाई लड़ी है।

जनी-शिकार—छोटा नागपुर में 'जनी-शिकार' का प्रचलन व्यापक रूप से है तथा इसका श्रेय उरांव जनजाति को जाता है। उरांव जनजाति की औरतें बारह वर्ष में लड़के की पोशाक पहन कर शिकार में निकलती है, जो अपने इतिहास को याद करती है कि किसी जमाने में उरांव जनजाति के लोग लड़ाई में मारे जाने के कारण उनकी औरतें मर्दों की पोशाक पहन कर निकली तथा उन्होंने बारह वर्षों तक लड़ाई लड़ी। वे तीसरी लड़ाई जीतने के पश्चात् चौथी लड़ाई बारह वर्षों के बाद हारी। इन्हीं इतिहास की यादगारी में जनी-शिकार होता है, फिर भी इसमें खोज की बात है, क्योंकि विद्वानों में मतैक्य नहीं है कि उन्होंने किस राजा अथवा किस जाति के साथ लड़ाई लड़ी। सम्भवतः 'मुसलमान'

अथवा चेरों के साथ लड़ाई हुई होगी तथा जनी नाम भी उरांव जनजाति का शब्द नहीं है सम्भवतः छोटा नागपुर में आने के बाद जनी नाम अपनाया होगा। अतः यह भी शोध का विषय है कि जनी नाम कब से प्रचलित है।

अतः यह कहा जा सकता है कि छोटा नागपुर की तमाम जनजातियों का रिवाज रहा है कि उनकी औरतों का शिकार खेलना रिवाज रहा होगा, जिसका प्रमाण कुड़मी में 'खुखड़ा उड़ा' या 'भेजा बिंधा' कहा जा सकता है। ऐसे तो मर्दों के शिकार के लिए अयोध्या शिकार जीता जागता उदाहरण है। ऐसे ही अन्य जनजातियों का भी कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में झलक मिलती है।

पूजा, अनुष्ठान पर बलि—कुड़मी समाज के गांवों में पूजा-पाठ तथा धार्मिक अनुष्ठान प्रत्येक वर्ष सामूहिक रूप से किया जाता है। ऐसे समय में भी स्त्रियों को शामिल होने पर निषेध है।

निषेध का कारण है कि पूजा अथवा बलि कमोवेश किया जाता है, उससे वह देवता खुश नहीं होता। विभिन्न विद्वानों ने इस पर अपना-अपना अलग मत दिया है। राय का कहना है कि इसका कारण स्त्रियों का मासिक धर्म से है, क्योंकि मासिक धर्म का संबंध खून से है और खून बुरी आत्माओं को आकर्षित करता है। अतः स्त्रियों को धार्मिक अनुष्ठानों में भाग नहीं लेने देते। वान एक्स एस० जे० ने इसका कारण जमीन का संबंध बताया है। चूंकि जमीन मूलतः आत्माओं की है और पुरुष ही उस जमीन के उत्तराधिकारी हैं, स्त्रियां नहीं। अतः जमीन के मालिक परमेश्वर और आत्माओं के साथ स्त्रियां नहीं बैठ सकतीं। इसके अलावा यह भी कहा जा सकता है कि स्त्रियों का स्थायी निवास-स्थान नहीं होता। चूंकि एक गांव की लड़की विवाह के पश्चात् दूसरे गांव में चली जाती है तथा दूसरे गांव से आयी हुई लड़की उस गांव की आत्माओं से परिचित नहीं रहती हैं, इसलिए उसे अनुष्ठान में शामिल नहीं होने देते। भले ही अनुष्ठान की सारी सामग्री स्त्रियों द्वारा सम्पन्न किया जाता हो।

ग्राम पंचायत—प्रत्येक कुड़मी ग्राम में एक ग्राम पंचायत हुआ करता है, जिसमें अपने गांव के भीतर किसी प्रकार का छोटा-मोटा केस, मुकदमा का फैसला ग्राम पंचायत के द्वारा किया जाता है। ऐसी हालत में भी स्त्रियों को शामिल नहीं किया जाता, परन्तु गवाही के रूप में स्त्रियों को बुलाया जाता है। ग्राम पंचायत में शामिल होने न देने का कारण उस गांव को चलाने का भार पुरुषों पर ही रहता है तथा उस गांव के परम्परा को पुरुष ही मानते हैं। अतः गांव का शासन अथवा नियम बनाना आदि पुरुषों का काम होता है।

कुड़मी समाज में एक अति विशिष्ट प्रचलन है, वह स्त्रियों को अपनी जात में पुनः लाना। यदि कोई लड़की किसी दूसरी जात के लड़के के साथ भाग जाती है अथवा जबरन उसको भगा कर ले जाया जाता है, तो उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। ऐसी हालत में एक निर्दिष्ट व्यक्ति जो समाज के द्वारा मनोनीत किया हुआ रहता है, जो मौजा का मालिक होता है। यह मौजा कई गांवों को मिलाकर बनता है तथा कई गांवों के लोगों द्वारा मनोनीत किया जाता है। जैसे "सात मौजा का मालिक", "पांच मौजा" का मालिक तथा "बारह मौजा" का मालिक और "तीन मौजा" का मालिक। बारह मौजा का मालिक सबसे उच्च पद में होता है। किसी को अपनी जात में शामिल करना हो तो इन मौजों के मालिक को अवगत कराया जाता है तथा निमंत्रण के माध्यम से उसे बुलाया जाता है। जिस लड़की को अपनी जात में लाना है, उस लड़की के घर वाले को दण्ड स्वरूप कुछ रुपये देने पड़ते हैं तथा उस लड़की के हाथ का पकाया हुआ भोजन सबसे पहले बारह मौजा का मालिक खाता है और उसके बाद सात तथा पांच और तीन मौजा का मालिक खाना खाता है। इस दिन से वह लड़की पुनः अपनी जात में शामिल हो जाती है और जो सामाजिक अवहेलना था, उसको समाप्त किया जाता है।

यह पंचायत मुण्डा, उरांव तथा अन्य जनजाति का जिस तरह अपना पाड़हा होता है, उसी तरह कुड़मी समाज का भी एक अपना पंचायत हुआ करता है, जिससे समाज के नियम-परिनियम को परिलक्षित करता है। साधारणतया कुड़मी समाज के लोग छोटे-छोटे विवादों को पंचायत के माध्यम से निपटारा करते हैं। यही पंचायत द्वारा मनोनीत गांव में "महतो" हुआ करता है, जो परम्परानुसार उसके वंश के साथ चलता है। "महतो" गांव का प्रमुख हुआ करता है तथा गांव के सभी लोगों को उसकी बात को माननी पड़ती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वह एक प्रकार का शासक हुआ करता है, जो उस गांव को सुचारु रूप से चलाता है। "महतो" शब्द "महत" का पर्याय है।

यह पंचायत-व्यवस्था कुड़मी समाज में एक-दूसरे से जुड़ा रहता है। सबसे बड़ी सामाजिक संस्था को परगनैत कहा जाता है। यदि महतो किसी केस का निपटारा नहीं कर पाते तो परगनैत के पास जाते हैं। अगर यह भी उसको कर न सके तो सीधे (देश मण्डल) राजा के पास चले जाते हैं। इस तरह सबसे ऊपर (देश मण्डल) राजा रहा करते हैं और उसके ऊपर महाराजा। इस तरह से पंचायत-व्यवस्था तथा कानून-व्यवस्था कुड़मी समाज में उपस्थित है और अभी भी इस विज्ञान युग में विद्यमान है।

इसी तरह गांव में अगर कोई व्यक्ति गाय अथवा बैल को जान से मार देता है अथवा शादी करके लड़की को छोड़ देता है आदि, इस तरह का काम पंचायत के माध्यम से किया जाता है।

वसंत कुमार मेहता ने अपनी पुस्तक ''कुरमाली चारि'' में लिखा है कि परगनैत 15 से 80 गांव तक हुआ करता है तथा निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार कर दण्डित करता है। अन्य गमण, जादू-टोना, नीच जाति के लोगों के साथ खाना-खाना, व्यभिचार या वशीकरण, गाय या भैंस को मारना, नीच जाति के लोगों द्वारा पीटा जाना, विवाह-विच्छेद कर किसी और के साथ भाग जाना तो गोत्र बहिर्विवाह का नियम का उल्लंघन करता है एवं कबिला के बाहर शादी करने वालों को दण्ड दिया जाता है।

यह नियम कुड़मी समाज को अपने कॉस्टमरी लॉ के अनुसार चलाने के लिए भारत सरकार ने अधिसूचना सं० 550, 2 मई, 1913 को लागू अन्य आदिवासी की तरह इनको भी भारतीय सकसेशन एक्ट से जोड़ दिया गया है, जिससे अपने कॉस्टमरी लॉ के अनुसार अनुशासित रहे। कुड़मी का कस्टम ठीक मुण्डा, संथाल, भूमिज, हो और खड़िया जैसा है। इस तरह कहा जाता है कि कुड़मी समाज का एक अपना कॉस्टमरी लॉ है जो अपने समाज को चलाने के लिए नियम-कानून के द्वारा मनोनीत व्यक्ति किया करते हैं।

ऊपरिलिखित पंचायत को हम यहां विस्तार से दिखाने का प्रयास कर रहे हैं, जो कुड़मी समाज का सर्वोच्च संगठन के अन्तर्गत आता है। यह संगठन समस्त झारखण्ड के बिखरे हुए कुड़मी के साथ है। कोई भी कुड़मी गांव की स्थापना होती है तो उसके पहले एक सभा का आयोजन किया जाता है, तब यह एक गांव के रूप में जाना जाता है, जिसका सम्पर्क किसी बाइसी के साथ होता है एवं बाइसी का संबंध परगना के साथ रहता है और परगना एकासी के साथ जुड़ा रहता है।

ग्राम-सभा गांव के महतो की अध्यक्षता में होती है जिस काम का निपटारा अध्यक्ष करता है, वह गांव के बड़े-बूढ़ों की सहायता लेता है। गांव में ''महतो'' का सबसे अधिक महत्व रहता है, क्योंकि गांव की शासन-व्यवस्था उसी के हाथ रहती है।

कई एक गांव को मिलाकर एक बाइसी बनता है जो आठ-दस से बीस-बाइस तक गांव एक बाइसी के अन्तर्गत होता है और बाइसी के अध्यक्ष को ''तालेबर'', कहा जाता है।

बाइसी का काम महतो द्वारा भेजा गया सभी काम तथा फैसला बाइसी के माध्यम से होता है, जो महतो द्वारा संभव नहीं होता है। इसका अध्यक्ष बहुत शक्तिशाली होता हे, जो भी इसकी बात नहीं मानता, उसके लिए कुआं, रास्ता, पोखर आदि बंद किया जाता है। जब अध्यक्ष द्वारा भी कोई काम का निष्पादन नहीं होता है तब उसको सीधे परगना की पंचेइत में जाता है। कई एक बाइसी मिलाकर एक परगनैत बनता है। परगना का मालिक अथवा अध्यक्ष को देश मण्डल कहा जाता है।

तत्पश्चात् ''बाइसी'' का काम आता है, जो कुड़मी समाज शिरोमणि बैठकी है, इसमें सभी परगना के महतो और तालेवर को चुन-चुन कर इनका सदस्य बनाया जाता है तथा प्रत्येक परगना से तीन सदस्य को लिया जाता है, परन्तु बाद में समय पूरा होने पर ये बदल दिये जाते हैं। इस तरह कुड़मी की अपनी सामाजिक व्यवस्था है, परन्तु कुछ ऐसी भी व्यवस्था है, जो परम्परानुसार चलती है। जैसे 'मेड़ला महतो' इसको बड़ महतो भी कहा जाता है। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जा रही है। शादी के समय 'मेड़ला महतो' के घर जाकर नियम-कानून के पालन के साथ व्याही लड़की को ले जाने की इजाजत ली जाती है। 'मेड़ला महतो' को कुछ रुपये दिये जाते हैं तथा उसके घर हल्का खाने-पीने की व्यवस्था रहता है। मेड़ला महतो उसको सभी आये बारातियों को पिलाते अथवा खिलाते हैं तथा लड़का लड़की का नाम शादी में रिकार्ड किया जाता है। इसे 'मेड़ला बुझा' कहा जाता है। इसके बाद ही लड़का, लड़की को अपना घर ले जा सकता है। इसलिए इसकी विदाई की अनुमति भी कहा जा सकता है, क्योंकि यह रस्म शादी के बाद होती है। तत्पश्चात् बारात लड़की के घर से विदा हो जाती है और अपने घर लौट आती है।

काम का बंटवारा—कुड़मी समाज में स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच काम का बंटवारा होता है, जिससे स्त्री तथा पुरुष अपने सुविधानुसार निपटारा करते हैं। घर के अन्दर अथवा घर का सारा कार्य का सम्पादन स्त्री करती है और घर से बाहर के कार्य को पुरुष करते हैं। खेती करना, हल चलाना, हल तैयार करना अथवा मवेशियों को चाराना आदि पुरुषों का काम है। खाना पकाना, झाड़ करना, रोपना, निकाना आदि कार्य स्त्री के जिम्मे होते हैं। कोई-कोई स्त्री अपने पुरुष अथवा मर्द की कमी में कुछ काम स्त्री को भी मजबूरन करना पड़ता है। उसमें भी हल चलाना, छत पर चढ़ना आदि काम को छोड़कर स्त्री तथा पुरुष का काम करने तथा सामान ढोने का तौर-तरीका भी अलग-अलग होता है। उसी तरह जिसके घर पर औरत का काम को पुरुष निष्पादन करते हैं, इसे यूं कहा जाए कि यह मजबूरन किया जाता है। मर्द औरतों का बहुत काम कर

लिया करते हैं, परन्तु औरतों को मर्दों का काम या तो विवश होकर अथवा मजबूरन करना पड़ता है। यहां तक कि जब किसी बेसहारा औरत को कोई काम पड़ जाता है तो वह अपने ही गोत्र के मर्दों को बुलाकर निपटारा करती है।

धर्म—कुड़मी धर्म को जानने के पूर्व विभिन्न धर्म के प्रति लिखित और प्रकाशित पुस्तकों का अवलोकन करना आवश्यक होगा, क्योंकि धर्म का अर्थ साधारणतः धारण करने वाला माना जाता है, परन्तु इसका सटीक अर्थ निकालने के लिए इसके दर्शन का अध्ययन आवश्यक है।

''धर्म सामजिक चेतना का एक विशेष रूप है जिसका विशिष्ट लक्षण लोागें के मन में उन पर हावी बाह्य शक्तियों का ऐसा भ्रमपूर्ण परिवर्तन है, जिसमें पार्थिव शक्तियां पार्थिवेत्तर रूप ग्रहण करती है। मार्क्सवाद, लेनिनवाद धर्म को सामाजिक चेतना का ऐतिहासिक रूप से अस्थायी रूप मानता है और उन मुख्य कारकों को प्रकाश में लाता है, जो समाज के विकास में भिन्न-भिन्न मंजिलों में अस्तित्व निर्धारण करते हैं।आदि समाज में उत्पादक शक्तियों के निम्न स्तर के कारण प्रकृति की शक्यों के सामने मनुष्य की विवशता ने धर्म को जन्म दिया था। इसी तरह विद्वानों ने भी इस विषय पर गहन अध्ययन कर अपना विचार व्यक्त किया है। मैक्समूलर के अनुसार धर्म के प्रति सटीक उदाहरण अभी तक नहीं मिल पाया है या धर्म की परिभाषा अपूर्ण माना है—इसमें कोई संदेह नहीं है कि धर्म की परिभाषा प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है। हजारों वर्ष पूर्व ये शब्द सामने आया। शब्द तो रह गया लेकिन इसका अर्थ सदी से सदी तक परिवर्तित होते रहा एवं यहां तक की आज इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी उस अर्थ में किया जाता है तो इसकी प्रारम्भिक अर्थ बिल्कुल विपरीत है। (आरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ रीलिजन : एफ० मैक्समूलर, पृ० 0-10)

धर्म का दर्शन का अपना ही इतिहास है एवं इसके अन्दर धर्म को देखने की विभिन्न नजरियों का एक सर्वेक्षण आता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि धर्म का दर्शन और धार्मिक-दर्शन एक ही होगा। धार्मिक दर्शन एक विशेष प्रकार का धर्म का दर्शन हो सकता है, लेकिन दोनों एक नहीं है, इसलिए विलियम जेम्स का धार्मिक दर्शन का अध्ययन करने का प्रयास धार्मिक दर्शन क्या है इसका विश्लेषण से प्रारम्भ करना चाहिए। (रिलिजियन फिलासाफी आफ विलियम जेम्स : आर० आर० सहाय, पृ० 1)

उनके लिए धर्म का अर्थ अपने एकान्त में हर व्यक्ति की भावना, कर्म एवं अनुभव है, वहां तक वह जिसको भी दैविक माने, उसके साथ समर्पित रहने का बोध करता है। (रिलिजियन फिलासाफी आफ विलियम जेम्स : आर० आर० सहाय, पृ० 1)

धर्म-विधि प्रतिष्ठित अथवा परम्परागत नियमों पर आधारित एक विशेष दृश्य का व्यवहार है जो हर समाज को प्रदर्शित करता है। (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 15, पृ० 863)

सम्पूर्ण इतिहास-काल में एवं सारी दुनिया में पाया गया है कि धर्म-विधि-व्यवहार परम्परागत नियमों के अनुसार प्रतिष्ठित अथवा स्थायी है। इस व्यवहार के अध्ययन में दो शब्द पवित्र एवं लौकिक, धर्म-विध व्यवहार से अन्य प्रकार के कार्यों को अलग करने में उपयोगी रहा है। (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 15, पृ० 864)

धर्म को दार्शनिक इतिहासकार निरिश्वरवादी एवं ईश्वरवादियों के विभिन्न परिप्रेक्ष्य से देखा जा सकता है। इस लेख का विषयवस्तु है समाजशास्त्रियों के परिप्रेक्ष्य से धर्म का अध्ययन। समाजशास्त्री पूछते हैं कि कैसे धर्म मनुष्य समाज की प्रक्रिया एवं ढांचा के साथ जुड़ा हुआ है एवं कैसे यह समाज का स्तर विन्यास-व्यवस्था, राजनीतिक एवं अर्थनीतिक प्रक्रिया, संघर्ष एवं समाकलन के स्तर एवं समाज परिवर्तन के मार्ग को प्रतिफलित एवं प्रभावित करता है। (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 15, पृ० 605)

इसके साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि धर्म दर्शन के बारे में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से इसको परिभाषित किया है तथा विद्वानों ने अपना विचार व्यक्त किया है, जिसकी चर्चा पूर्व पृष्ठ में हो चुकी है। उसी आलोक में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने जो भी अपनी समीक्षा देते हुए तथा ओल्ड टेस्टामेन्ट की भी चर्चा करते हुए तीन प्रमुख बिन्दुओं पर टिप्पणी डाला है, वह निम्न है—(1) एक साधारण विश्व-दृष्टिकोण की ढांचा में धर्म का चरित्र को विश्लेषण एवं वर्णन करने का प्रयास (2) विभिन्न धार्मिक अवस्थानों को दार्शनिक रूप से रक्षा एवं आक्रमण करने की कोशिश और (3) धार्मिक भाषाओं को विश्लेषण करने का प्रयत्न। (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 15, पृ० 604)

इस तरह धर्म के बारे में अपना-अपना विश्वास प्राप्त है, जो समाज में मान्यता प्राप्त किया है। उसी तरह से कुड़मी लोगों की भी मान्यता है।

कुड़मी धर्म : जाहिरा

झारखण्ड, बंगाल, उड़िसा में रह रहे सभी कुड़मी समुदाय का मूल धर्म जाहिरा है। इसको अन्य सम्प्रदाय में सरना कहा जाता है। जाहिरा और सरना दोनों एक ही अर्थ रखता है, सिर्फ नाम का अन्तर है। कुड़मियों ने कभी भी

अपना धर्म को नहीं बदला, परन्तु किसी-न-किसी कारण से दूसरे धर्मों में प्रभावित दिखायी दे रहे हैं। यह घटना चौदह-पन्द्रह सौ ईश्वी के बाद जब चैतन्य महाप्रभु वैष्णव धर्म का प्रसार कर रहे थे उसी समय से कुड़मी हिन्दू वैष्णाव धर्म से प्रभावित होते दिखाई दे रहे हैं। इसके साथ ही सरकारी अफसरों द्वारा इनको प्रभावित किया गया और ये अपने धर्म की जगह दूसरे धर्म अंकित करने लगे। यह सिर्फ प्रभाव मात्र था, परन्तु घर नहीं कर पाया। सिर्फ दिखावा के लिए ही परम्परा चली फिर भी इसकी छाप कभी भी परिलक्षित नही होती है।

ऐसे तो झारखण्ड में कई धर्म चले। जैसे टाना धर्म, बिरसा धर्म आदि इस क्षेत्र में चले और बहुत लोग प्रभावित हुए। छोटा नागपुर में जितना ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार हुआ उतना किसी भी धर्म का प्रचार नहीं हुआ और न ही वैष्णव धर्म का। वैष्णव धर्म से बहुत लोग प्रभावित हुए हैं। छोटा नागपुर में जितना कुड़मी वैष्णव धर्म से प्रभावित हुए थे, उतना किसी धर्म में नहीं हुए। ऐसे पांच परगना क्षेत्र के मुण्डा भी वैष्णव धर्म से प्रभावित हुए हैं। इस तरह जाहिरा, सरना, टाना, कबीर-पंथ आदि चले।

जाहिरा धर्म को मानने वाले मूल रूप में कुड़मी हैं। जाहिरा का अर्थ होता है झाड़-जंगल, जहां पुराने-पुराने पौधे एक जगह झुरमुट की तरह खड़े हो तथा गांव बसाने से पहले झाड़-जंगल साफ करते समय उस पेड़-पौधों को छोड़ा गया हो। कुड़मी साधारणतः किसान हैं, हल चलाकर अपना जीवन-यापन करने वाले हैं, इसलिए इनका मूल पूजा भी प्रकृति-पूजा है और मूल धर्म जाहिरा है। जाहिरा जहां बड़े-बड़े पेड़ों का झुरमुट होता है, वहीं पर कुड़मी समाज के लोग सामूहिक रूप से पूजा-अर्चना करते हैं। जिस जगह पूजा की जाती है, उस स्थान का पेड़ को नहीं काटा जाता है, भले ही जंगल के जंगल क्यों न साफ हो जाए। आजकल ऐसी भी जगह देखने को मिलती है वहां जाहिरा के नाम मात्र एक ही पेड़ दिखाई देते हैं। यह परिणाम जंगल-झाड़ के कट जाने से हुआ। मात्र नाम का जाहिरा है, जहां गांव के लोग सामूहिक पूजा-अर्चना करते हैं। पूजा-अर्चना में सिन्दूर, अरवा चावल, पानी जाहिरा माँ के नाम एक पत्थर चढ़ाया जाता है। इसको पहाड़ का प्रतीक माना गया है। साथ ही पूजा-अर्चना के साथ सूर्य की ओर हाथ उठाया जाता है। इससे पता चलता है कि कुड़मी सूर्य का उपासक हैं। सूर्य की पूजा तो व्यापक रूप से होता है, इसलिए कुड़मी समाज में सुरजाही पूजा या धर्म-पूजा का प्रचलन है।

जाहिरा धर्म की उत्पत्ति—बृहदतर झारखण्ड के कुड़मी खेतिहर हैं। चास करना इनका मुख्य धर्म है। जब चारों तरफ जंगलों से भरा हुआ था, उस समय जंगल के वृक्ष को काटना, झाड़-जंगल साफ करना और जमीन को खेती योग्य

बनाना मूल कार्य था। उसी समय कुड़मी जाति के लोगों का विश्वास था कि जब सारा का सारा जंगल साफ हो जाएगा तो उसकी आत्मा भटक जाएगी। इसलिए कुछ पेड़ को नहीं काटते थे, वहीं जाहिरा थान के नाम से जाना जाने लगा और सामूहिक पूजा-अर्चना किया जाने लगा, क्योंकि पेड़ के छोड़ देने से जंगलों की आत्मा उन पेड़ों पर सिमट कर रह जाएगी अथवा प्रकृति की आत्मा उसमें निवास करेगी। यही इनका विश्वास था।

कुड़मी साधारणतः प्रकृति-पूजक हैं। इनका मूल धर्म जाहिरा है तथा मूल देवता सूर्य हैं। प्रकृति के देवता शिव इनके भगवान हैं। कुड़मी लोगों का विश्वास है कि जहां जाहेइर थान है जिसको जाहिरा कहते हैं, वह सिर्फ जंगलों की आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए सामूहिक अनुष्ठान किया जाता है, जिससे किसी प्रकार का कोई गलत या बुरा प्रभाव न पड़े। ऐसे तो आज जहां भी जाहिरा थान है, वहां मात्र एक या दो वृक्ष ही दिख पड़ते हैं। जब पूजा-अर्चना होती है, उस दिन उन्हें साफ-सुथरा कर सामूहिक अनुष्ठान करते हैं। पूजा सम्पन्न करने वाले व्यक्ति को देवना या 'लाया' कहा जाता है। देवना का मतलब होता है जो सभी आत्मा के बारे में जानते हों तथा उसको मनाने की क्षमता रखते हों तथा झाड़-फूंक या दवा दारू करता हो।

सुरजाही-पूजा—कुड़मी सूर्य का आह्वान करते हैं, क्योंकि किसान होने के कारण सूर्य पिता और धरती माता मानी गयी हैं और इन दोनों के मिलन से ही अनाज अथवा धन की प्राप्ति होती है। इसलिए कुड़मी समाज में सुरजाही अथवा धर्म-पूजा का प्रचलन है। जिस तरह सूर्य के उगने से सम्पूर्ण संसार में प्रकाश फैल जाता है, उसी प्रकार सुरजाही अथवा धर्म-पूजा वंश चलाने हेतु एक पीढ़ी के बाद की जाती है, जिससे वंश के लोग सूर्य की रोशनी की भांति चमकते रहे। इसलिए सुरजाही-पूजा वंश के बड़े बेटे को जिम्मेवारी दी जाती है तथा सूर्य देव का आह्वान किया जाता है कि सूर्य देव इस व्यक्ति की रक्षा करना जो धर्म के अनुसार मान-सम्मान करेगा। इसके किसी भी काम में किसी के विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित रखें। इसी तरह सूर्य का आह्वान कर मंत्रोच्चार करते हैं तथा तमाम वंश के लोग उस अनुष्ठान में सम्मिलित होते हैं और सामूहिक रूप से जो अपना-अपना बकरा लाते हैं, उसकी बलि दी जाती है और सूर्य देव को भेंट चढ़ाया जाता है। बलि-प्रथा कुड़मियों में परम्परा से चली आ रही है।

इसी तरह कुड़मियों की पूजा में सूर्यदेव का स्थान सर्वोच्च है, चाहे वह भानसिंह के रूप में पूजा किया जाय अथवा आखाइन के नाम से सभी सूर्य को इंगित करते हैं। आज हर कुड़मी के घर सुबह उठने के पश्चात् सर्वप्रथम दरवाजे

पर गोबर और पानी का छिटका, जिसमें सूर्य का आकार बनाना आदि परम्परा से चला आ रहा है। इसलिए कुड़मियों में सूर्य पूजा या सुरजाही पूजा जो धर्म के नाम से माना जाता है, अभी भी प्रचलित है। आज भी इस समाज में कोई व्यक्ति यदि किसी प्रकार का प्रण करता है या शपथ खाता है तो वह अपना हाथ ऊपर उठाता है। इसका अर्थ सूर्य को हाथ में रखकर विश्वास दिलाने का प्रयास करता है कि गलत होने पर मैं भस्म हो जाऊं, इसका एहसास दिलाता है।

ग्राम-देवता—ग्राम-देवता का मुख्य काम है ग्राम की रक्षा तथा उनके साथ रह रहे सभी जीवधारियों की रक्षा या प्रकृति के प्रकोप से रक्षा करना। ग्राम-देवता महामारी जैसे रोग, आकाल, बड़ी माता, छोटी माता तथा अन्य कई प्रकोप से रक्षा के लिए ग्राम-देवता का आह्‌वान किया जाता है। साथ ही साथ कुड़मी जब कहीं सामूहिक कार्य में जाते हैं या शिकार आदि में निकलते हैं तो ग्राम-देवता का स्मरण करते हैं। कुड़मी समाज के लोग ग्राम-देवता की पूजा-अर्चना उसी व्यक्ति से सम्पादित कराते हैं, जो पारम्परिक होता है।

ग्राम-देवता की पूजा-अर्चना जब कुड़मी लोग करते हैं तब उसमें समस्त गांव के लोग मिलकर चन्दा करते हैं, और बलि हेतु बकरे अथवा मुर्गी तथा सुअर को खरीदते हैं और बलि चढ़ाते हैं, जिसमें विश्वास है कि ग्राम-देवता खुश रहते हैं और उस गांव के लोगों को प्राकृतिक आपदा और विपदा से बचाये रखते हैं। देवना लाया जो धार्मिक मुखिया होता है, कहीं-कहीं उसे देवरी भी कहा जाता है।

गृह-देवता—कुड़मी समुदाय में सबसे अधिक मान गृह-देवता का है। यह देवता सभी कुड़मी का अपना-अपना व्यक्तिगत होता है। इसको 'भीतर बूढ़ा' 'भीतर बूढ़ी' कहा जाता है, जिसकी पूजा-अर्चना घर के स्वामी, जो होता है, उन्हीं से सम्पादित होता है। उसके साथ ही साथ खेत, टांड आदि में भी व्यक्तिगत रहा करते हैं। उनकी पूजा का सम्पादन उसी गृह स्वामी द्वारा होता है।

डिनि बूढ़ी—कुड़मी समाज में डिनि बूढ़ी का भी काफी प्रचलन है। यह डिनि लक्ष्मी का प्रतीक है। इसलिए सम्पूर्ण धान का फसल काटने के बाद एक पौधा खेत में छोड़ा जाता है, जिसको शुभ दिन 'अघहन साक्रान्त' देखकर मिट्‌टी समेत उखाड़ कर पूजा-अर्चना के साथ खलिहान तथा घर में प्रवेश कराया जाता है और जहां मोरा (बाइंध) या डिमनी होता है, उसके ऊपर रख दिया जाता है। कुड़मी समाज के लोगों का विश्वास है कि उस लक्ष्मी का प्रवेश या ''डिनि बूढ़ी'' को घर लाने के समय कोई नहीं देखे, अन्यथा वह लक्ष्मी दूसरे घर चली जाएगी। इसको ''डिनी जिरान'', ''ठाकुराइन'' भी कहा जाता है।

कुड़मी समाज के लोग शाम के समय ही 'डिनि बूढ़ी' को घर लाते हैं। इसके पहले होता है खलिहान-पूजा। प्रारम्भ में ही उस खलिहान की पूजा होती है, जिसको खेरेइ-पूजा कहा जाता है।

इसके अलावे कुड़मी समाज में बुरू का प्रचलन है। बुरू का अर्थ होता है—पहाड़—इसकी पूजा-अर्चना सामूहिक रूप से किया जाता है। इस तरह कुड़मी समाज में करीब-करीब हर महीने एक पूजा होती है, जिससे बारह मासे तेरह पारबन के कथन द्वारा व्यक्त किया गया है। परन्तु कुड़मियों में पूरे वर्ष में छ: मास ही होते हैं। इसलिए करम गीत में कहा गया है—

जाहु-जाहु करम राजा ए हो, छह मास।

आवत भादर मास आनब घुराए

साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि ''माघ मास'', निरन मास, बेइरसा मास, भादर मास अगहन और पूस मास।

टुसू—कुड़मी समाज में जिस तरह 'टुसू' का प्रचलन है, उस तरह किसी दूसरे समाज में नहीं देखा जा सकता है। टुसू कुंवारी लड़कियों का त्योहार है, जब टुसू की पूजा-अर्चना नहीं हो जाती तब तक कुड़मी समाज की लड़की अथवा लड़के का विवाह सम्पन्न नहीं होता। टुसू की थापना मकर संक्रांति से एक मास पूर्व यानि अगहन संक्रांति को ही की जाती है, जिसमें चावल की गुंडी गोबर, धूप, फूल आदि रहता है। तब से एक मास या पहला माघ तक उसको जगाया जाता है अर्थात् पूरे पूस-मास टुसू की अर्चना की जाती है और अन्त में टुसू को प्रत्येक गांव से बाजे-गाजे के साथ उमंग और उत्साह के साथ निर्दिष्ट मेला में लाया जाता है, जहां सामूहिक रूप में दूर-दूर से समाज के आये लोग एक-दूसरे से मिलते हैं और अन्त में भाव-विभोर हो बालिकाएं टुसू को नदी या प्रवाहित जल पर विसर्जित कर देती हैं।

कुड़मी समाज में शादी-विवाह के लिए लड़की देखने का प्रचलन उसी टुसू मेला से शुरू होता है और लड़की पसन्द आने पर गोतियारी यानि मेहमानी उस गांव में जाते हैं और बाते करते हैं। वहीं से विवाह का प्रचलन कुड़मी घर में शुरू होता है। साथ ही साथ 'आखाइन' जातरा भी उसी दिन होता है, जिसके अनुसार कुड़मी लोगों का पहला हल खेत में चलता है। 'आखाइन' का अर्थ साधारण तौर पर सूर्य से लिया जाता है और सूर्य की यात्रा दक्षिणायण से उत्तरायन की ओर प्रारम्भ होता है। जो मकर संक्रान्त से शुरू होता है।

टुसू मेला धान मिसौनी के बाद जब घर पर धान परिपूर्ण रहता है, उसी समय यह अनुष्ठान होता है। लोगों को अवकाश होता है। फलस्वरूप सभी प्रसन्न मुद्रा में दिखाई देते हैं। मुर्गे की लड़ाई करते हैं। टुसू मेला में एक अलग

उमंग उत्साह लोगों में दिखाई देती है और खास बात यह है कि युवक-युवतियां नये परिधान धारण करते हैं। नये परिधान के बिना मेला नहीं आते। बुजुर्ग भी नये वस्त्र धारण करते हैं।

टुसू मेला के दिन युवक-युवती को गृह-स्वामी द्वारा किसी प्रकार का निषेध नहीं रहता, इसलिए खुशी मन से गीत गाते हैं और युवक गाजे-बाजे के साथ उत्सव का आनन्द उठाते हैं। अथवा गीत-संगीत-प्रेमी लोग इसमें भाग लेते हैं। टुसू के पूर्व तीन अनुष्ठानिक दिन होते हैं—आउंडी, बाउंडी और चाउंडी। इन तीनों का अपना विशेष महत्व होता है। टुसू मेला के पहले का दिन 'मकर डूब' का प्रचलन है। साधारणतया कुड़मी लोग सूर्य उठने के पहले अपना स्नानादि करते हैं ताकि सूर्य के उदित होने से पूर्व शुद्ध होकर उनका दर्शन कर सकें। स्नान करते समय मनुष्य पूर्व की ओर मुंह करते हैं तथा हरतकी (हर्रा) फेकने का रिवाज है। 'मकर डूब' बहता हुआ जल में ही किया जाता है, परन्तु आजकल असुविधा के कारण लोग तालाब आदि से भी काम निकाल लेते हैं। नहीं तो 'मकर डूब' और टुसू का विर्सजन बहता हुआ जल में ही होता है।

आज लोगों की संख्या बढ़ गई है और जहां-तहां बसने के फलस्वरूप प्रत्येक जगह पर नदी होना सम्भव नहीं हो पाया जिसके कारण लोग मकर डूब के दिन 'गंगा सागर' आदि जगहों पर जाकर स्नान-दान करते हैं। मकर डूब कहीं-कहीं 'मकर नहान' के नाम से भी प्रचलित है। 'मकर नाहान (सिनान) को चूंकि 'मकर संक्रांति' के दिन सम्पन्न होता है, इसलिए हिन्दू प्रभावित लोगों ने कुड़मी के मकर डूब को भी अपने में समेटने का प्रयास किया है, परन्तु कुड़मी का मकर डूब सदियों से चला आ रहा है। 'मकर डूब' देने के बाद कुड़मी घर के लोगों का 'पीठा तथा मुड़ही' खाने का रिवाज है, परन्तु दूसरे लोगों का तिल और चिउड़ा खाने का। कुड़मी घर में जो पीठा बनाया जाता है, उसके पहला पीठा को सात पीढ़ी के पूर्वजों को भेंट किया जाता है, जिसको चुल्हा के आंछी में रखा जाता है, परन्तु हिन्दू प्रभावित लोगों के घर में जब पूड़ी-रोटी बनती है तो पहली पूड़ी को चूल्हे में ही डाला जाता है।

टुसू मनाने का कारण—सम्पूर्ण झारखण्ड में 'टुसू पर्व' बड़े ही धूमधाम से तथा उत्साह के साथ मनाया जाता है, परन्तु 'टुसू' के बारे में बहुत कम लोगों को जानकारी है, इसलिए विभिन्न प्रकार का अपना विचार प्रकट करते हैं। कभी इनको काशीपुर के राजा की बेटी के रूप में जानते हैं तो कभी सराइकेला के राजा की। कभी-कभी लोगों ने गणेश की पुत्री भी कहा तथा इसको सती होने का प्रमाण देते हैं, परन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है।

किंवदन्ती के आधार पर 'टुसू' को काशीपुर के राजा की बेटी माना जाता है तथा राजा को कुड़मी वंश का होने का दावा किया जाता है। 'दुसू' वाल्यावस्था में ही हर क्षेत्र में पारंगत हो गई थी। अस्त्र-शस्त्र संचालन, शिकार खेलना आदि। राजा को यह देखकर चिन्ता हुई तथा वाल्यावस्था में ही किसी राज खानदान जो कुड़मी समाज से बाहर के थे, में शादी देने का निर्णय कर देते हैं। 'टूसू' ने अपने पिता से विनती की कि मेरा व्याह बालिग होने के बाद कराया जाय तथा अपने ही जाति के लड़के से हो, परन्तु राजा का विचार अटल था। अन्ततोगत्वा टुसू अपना घर छोड़कर समाज के लोगों को रास्ता दिखाने के लिए घर से निकल पड़ती है और उसी क्रम में उनकी मृत्यु हो जाती है। शोकाकुल राजा टुसू की याद में उसके शिक्षा काल तथा मृत्युकाल के बीच अगहन में उसकी स्थापना करते हैं और माघ के पहले दिन विसर्जन करते हैं।

शिक्षा के क्रम में टुसू चूंकि नाबालिग थी, इसलिए समाज के लोग इनको अति आदर से देखते थे तथा इसको एक बच्ची का रूप दे देते हैं। आज अगहन संक्रांति में टुसू का थापना किया जाता है। पूस संक्रांत में इसका विर्सजन किया जाता है तथा हर रोज इसको 'जगाया' जाता है। थापना के समय गुंडी 'आरवा' चावल तथा गोबर और खोई आदि रहता है। अन्त में आउंडी की रात जागरण होता है तथा टुसू को प्रत्येक कुड़मी गांवों में गली-गली घुमाया जाता है और हेगड़ा चौड़ल किसी नदी में प्रवाहित किया जाता है। 'मकर डूब' देने के बाद नये-नये वस्त्र धारण करते हैं तथा अच्छे-अच्छे पकवान खाते हैं। सामान्यत: 'टुसू' पर्व में पीठा, मुंडी, गुड़, चिउड़ा तथा डुंबु पीठा खाने का रिवाज है। साथ ही साथ शिकार भी खाया जाता है।

दूसरे दिन यानि पहला माघ में वही 'टुसू' मेला में तब्दील हो जाती है, जिसमें रंग-बिरंगे चौड़लों के साथ उसकी शोभा-यात्रा निकालते हैं। लोग नये-नये वस्त्र पहन कर मेले में आते हैं तथा आनन्द उठाते हैं। शिक्षा के क्रम में यह भी एक अध्याय था कि 'टुसू' मेला के दिन कुड़मी घर की नवयुवती एवं नवयुवकों का अप्रत्यक्ष 'देखा-देखी' होता है तथा शादी-विवाह प्रारम्भ होता है। अगहन संक्रांति से लेकर एक माह तक लड़के-लड़कियां अश्लील गीतों का भी कभी-कभी प्रयोग करते हैं। ऐसे गीत साधारणत: खेत-खलिहान तथा बैल, बकरी चराने के समय गांव से बाहर गाए जाते हैं। लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे पर छींटाकशी करते हैं। यहीं से समाज के लोग अपने बेटे-बेटियों को शादी देने का निश्चय करते हैं।

टुसू ने शिकार खेलने की भी शिक्षा दी थी। उसका कहना था कि राजतंत्र में सभी को राजा के अधीन रहना होगा तथा उसकी आज्ञा का पालन करना

होगा अन्यथा सबको मल्ल योद्धाओं द्वारा कुचल दिए जाओगे। इसलिए तुम अपने शरीर को इतना हृष्ट-पुष्ट बनावो कि राजा के मल्ल योद्धाओं द्वारा हार खानी न पड़े। इसी ख्याल से कुड़मी समाज में 'फोदी खेल' प्रारम्भ हुआ तथा एक-दूसरे गांव के बीच फोदी खेल की प्रतियोगिता होती है। इसी क्रम में लोग कुश्ती लड़ते हैं और अपनी ताकत अजमाते हैं। साथ ही साथ शिकार खेलने का भी प्रचलन है जिसको 'खुखड़ा उड़ा', 'भेजा बिंधा' आदि नामों से जाना जाता है। यही 'खुखड़ा उड़ा' उड़ीसा में राजा घोषित किया जाता है। इसमें मुर्गी को उड़ा दिया जाता है तथा तीन-चार गांव के लोग उसको मारते हैं जो पहले मार सकता है, वही एक वर्ष के लिए राजा घोषित किया जाता है। ऐसे ही 'भेजा बिंधा' है जो बंगाल में कुड़मी लड़कियों की प्रतियोगिता होती है। यह सिर्फ लड़कियों का ही होता है। इस तरह से उत्साह और उमंग के साथ टुसू मेला सम्पन्न होता है।

अन्त में टुसू के बारे में यह कहना उचित होगा कि टुसू एक देवी है। यह लक्ष्मी का रूप है, क्योंकि कुड़मी समाज में डिनि बूढ़ी लाने का रिवाज है। जिसमें खेत से धान खलिहान तक आता है तब डिनी बूढ़ी को लाया जाता है। जब टुसू का धन-दौलत के साथ घर में प्रवेश होता है। पूरा अगहन संक्रांति से लेकर पूस संक्रांति तक धन का प्रवेश होता है तथा घर धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। साथ ही जिस बाइंघ अथवा मोरा को बीज के रूप में रखा जाता है वह भी पूस संक्रांति के आस-पास ही बांधा जाता है तथा डिनी बूढ़ी को उसी के ऊपर रखा जाता है।

अत: टुसू एक छोटी लड़की के रूप में लक्ष्मी का ही एक दूसरा रूप है। टुसू की आकृति विभिन्न प्रकार की होती है। टुसू को कहीं पीढ़ा के ऊपर बिठाया जाता है तो कहीं अर्द्धशरीर के रूप में जिसमें टुसू का सिर है, हाथ नहीं तथा पैर एक ही दिखता है, जिसको ऊपर से नीचे तक रंग-बिरंगे कागज से ढंका जाता है। लक्ष्मी जैसी दिखती है, उसी भांति टुसू भी दिखती है। कहीं लकड़ी का तो कहीं मिट्टी का होता है। टुसू मेला आखाइन-यात्रा के दिन होता है।

आखाइन का तात्पर्य सूर्य से है तथा इसी अनुरूप भानसिंह तथा ईंद होता है। सबके सब सूर्य का रूप होता है। इसे कुड़मी समाज में बड़े ही धूमधाम से मनाते हैं।

टुसू मेला के दिन से ही माघ मास शुरू होता है। किसी दूसरे घर में काम करने वाले नौकर अपने-अपने घर चले जाते हैं इसे माघ मास करना कहा जाता है। इसी दिन पहला हल खेत में घुमाया जाता है। बैल अथवा काड़ा और हल

चलाने वाले का पैर धोया जाता है। लोग गोबर काटते हैं और नहा-धोकर दही-चूड़ा खाने का प्रचलन है। "हुसु" मेला के दिन ही "सहिया" (प्रसाद) जोड़ा जाता है जो दूसरे समाज का सदस्य होता है।

टुसू से सम्बन्धित कुछ गीतों का नमूना इस प्रकार है—

टुसू थापना

(1) हामरा जे मां टुसू थापि
अघहनअ संक्राइते लअ।
अघनअ सांक्राइते टुसू, हांसि-हांसि जाबे लअ।
पुस सांक्राइते टुसू
कांदि-कांदि जाबे लअ।
कांदि-कांदि जाबे लअ,
हामरा जे मां टुसू थापि।
अघहन सांक्राइते लअ।

(2) पूस मासे कि चांद उठेछे,
चांदेर वड़अ आलअ लअ।
तेमनि आलअ करवे टुसू,
खैइल कदमेर तले लअ।
खेइल कदमेर तले टुसू,
नाना रंगल सुपलि।
बाछि-बाछि सुपलि लिब,
ननद खेला करिबअ्।
बाछि-बाछि सुपलि लिबअ,
ननद खेला करिब
ननद डुबलअ् जले,
ननद के छाकबअ लअ।
माया जाले, माया जाले,
ननद डुबलअ जले,
अहरे ननद डुबलअ जले।"

(3) आउअल रे घुरघुरनि पका,
दखिन दिगेर वासाते।
आउअल सनारअ पालकि,
टुसू धन के लेगिते।

आउअल रे सनारअ पालकि,
टुसू धन के लेगिते।
टुसू लेगछ भालअ करछअ,
टुसू राइखअ जतने।
आमार टुसू सिसु छाइला,
दुखेर मरम जाने ना।
आमार टुसू सिसु छाइला,
दुखेर मरम जाने ना।

(4) पुरूबे उठिलअ, तारा, सेइ तारा,
टि मेघ तारा,
जखन डुबे अइ तारारटि
तखन मरे खालभरा,
जखन डुबे अइ तारारटि,
तखन मरे खलभरा।
बनेर कालइ चरा,
आमरा गाइल दिबअ् रे,
खाल भरा के खलभरा,
बनेर कालइ चरा।

(5) इ घर कादा उ घर कादा,
फैलाबअ् लहार चले जावद्।
सैलाबअ माइएर बेटा,
बड़व माइएर पुत्र तुमि।
दुपाए खाए उ दुध मुंडि,
आसअ धन के कले करि,
काइल जाव ससुर बाड़ि।

(6) टुसू के आनिते जाबअ्,
चन्दन काठेर चउड़ले।
जदि टुसू दइआ करे,
राखबअ् सनार मंदिरे।
टुसुर छाइने फुल फुटेछे,
फुटेछे कलि-कलि।
हाथ बाढ़ाइए तुलते गेले,

देइ जड़ा पानेर खिलि।
जड़ा जड़ा पानेर खिलि,
जांति काटा सुपारि।
एतअ दिनेर भालअ बासा,
आज केनअ् जबाब दिलि।
जबाब दिलि भालअ् करलि,
आमार कि दिन गेलअ् ाइ।
माथार ऊपर सुरजअ जले,
से कि विचार करे नाइ।

(7) टुसू जाए मां जले जले,
आमरा जाइ मा जल धारे।
टुसूर संगे देखा हबे,
सेइ कलि कदम्ब तले।
टुसूक छाइने लाठ फरला तड़ि लेला बागाले,
अरे बागाल धरा जावे नउतन राजाक महले।
जखन बागाल धरालअ् तखन आमरा बाँधाघाटे
घाटेक हेरेइद घाटे रहला टुसू मेला दरबारे।
दरबारे गेले टुसू मुकअदमाए कि हइलअ,
मुकदमा डिगरि हइलअ् लिलमनि चालान गेलअ्।

(8) आमार टुसूर एकटि छाइला,
फूल तले वह खेले ना।
कन सइतिने धुला दिलअ्,
धुला चिनहा गेलअ् ना।

(क) आमार टुसूर एकटि छाइला,
मान बाजारे ससुर घर।
घटिर ऊपर बाटि दिएं,
पालाय आइलअ् बापेर घर।

(ख) एक सड़पे दुइ सड़अपे,
तिन सढ़अपे लग चले।
आमार टुसू एकाइ चले,
बिन गासाते गा डले।

आदाड़े बादाड़े पदअ,
पदअ् फुल आर फुटे ना।
आमार टुसू हाथे पदअ,
भअमर आर बसे ना।

(9) रामेर मां कसइला रानि,
धुलाए पड़े अचेतन।
उठअ् मां चेतन करअ् गअ्।
फिरेछेतर राम-लखन।

(क) सिल्ली सहरे देखि आउअल तिन टि,
टुसू बेहुला।
कन बेहुला लेबे तहरा
पिंधाए देवं चांदमाला।

(ख) आगा डाइरे कुइलिक बासा,
माझ डाहरे केरकेटा।
हामार टुसुज फांस आड़अला,
लटकंला बापेक बेटा।

(10) झाडंगा गड़ेर राजाक बेटा,
से करे टुसू पूजा।
खालाएं खालाएं जिलपि खावा,
डान हाथे फुल बातासा।

विदाइ-गान

(11) टुसू धन के जले दिबअ ना,
आमार गान करे साद मिटे ना।
तदेर घरे टुसू छिलअ्,
करि गअ् आना गना।
आइज त टुसू चले जाबे,
हबे गअ् दुआर माना।
जल-जल जे करअ् टुसू,
जले तुमार के आछे।
अनतरे माभिए देखअ,
जले ससुर घर आछे।

जन्म संस्कार—कुड़मी समाज में विवाह के पश्चात् ही बालिग लड़के-लड़की को एक साथ रहने, सोने का छूट है। दिन भर काम करने के पश्चात् शाम के समय दोनों को मिलने का इंतजार रहता है। रात्रि भोजन करने के पश्चात् स्त्री-पुरुष सोने चले जाते हैं और अंधकार में सहवास करते हैं। अंधकार में इसलिए क्योंकि आस-पास में ही घर के बाकी सदस्य विश्राम कर रहे होते हैं। इसलिए लज्जा, शर्म के कारण अन्धकार का प्रयोग करते हैं। सहवास के क्रम में पुरुष का ''शुक्रकीट'' महिला के ''डिम्बानु'' मिलकर महिला के गर्भ में स्थापित हो जाता है। माता के गर्भ में बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता है। इस समय स्वाभाविक क्रियाएँ ''मासिक धर्म'' बन्द रहता है। औरत को अच्छा-अच्छा खाना खिलाया जाता है। ''साद भखन'' इसी का एक कड़ी है। परन्तु कुड़मी समाज में काम करना बन्द नहीं रहता है। गर्भ धारण की हुई औरतों को ''पाँवाति'', ''भारिगात'', ''दुजीबी'' आदि कहा जाता है। जोड़ अथवा बिजोड़ दिनों के गर्भ से ''लड़के'' एवं ''लड़की'' की सम्भावनाएँ होती है। इसके बाद गर्भ में बच्चा नौ महीने तक रहता है तब शिशु का जन्म होता है। कभी-कभी पहले एवं बाद का भी प्रमाण मिलता है। बच्चा का जन्म होने पर औरतों को कई प्रकार के निषेध का पालन करना पड़ता है जिसका ज्ञान उन्हें ''जावा'' ''करम'' में ही दिया जाता है। प्रसुति के पश्चात् औरतों को ''ओल-सिद्ध'' खाने में दिया जाता है। विश्वास है कि इससे खून का निर्माण होता है तत्पश्चात् बच्चों को शुद्ध घी या सरसों तेल से तथा माता को लहसुन युक्त तेल से मालिश किया जाता है। इक्कीसवें दिन के पश्चात् माता सभी नियमों से मुक्त हो जाती है।

कुड़मी घर में जब नये शिशु का आगमन होता है, तो सर्वप्रथम'धाए माए', जो अनुसूचित जाति की औरतें हुआ करती हैं, आती है। सम्भवतः शिशु के जन्म लेने के पूर्व नौ महीने तक कोई नियम-कानून नहीं है। यही धाए माए नर्स का काम करती है और नये बच्चों की ''नारा'' तीर या हंसुआ से काटती है। उसके बाद कांसा पीटा जाता है या छप्पर ढड़ाया जाता है ताकि घर का मालिक सुनकर पास आएं, क्योंकि जब तक प्रसव नहीं होता है तब तक कोई भी मर्द का प्रवेश निषेध रहता है। वह अपना पति ही क्यों न हो। उसके बाद यदि लड़का का जनम हुआ है, तो उसे ''हरवाहा'' तथा लड़की के लिए ''पेनिहारिन'' कहा जाता है। तत्पश्चात् 'धाए-माए' खबर सुनाने उनके (रिश्तेदार) के घर जाती हैं और एक-एक पुराना कपड़ा ले आती हैं। इधर धाए

माए नियमित रूप से ''जाड़ा'' पता (रेंडी) तथा भरसी की आग से बच्चे की मां का सेंक लगाती है और बच्चे को तेल शुध घी मालिश करती है।

जिस घर में नया बच्चा का आगमन होता है, उसका पुरा खानदान में ''छूत'' रहता है और दाड़ी-नाखून नहीं काटते। छठवें दिन में स्नानादि होता है और उसी दिन लड़का अथवा लड़की का छठी होता है। लड़की-लड़के के लिए क्रमश: 6 दिन आठ दिनों में होता है। नामकरण में दादा, दादी का नाम रखा जाता है, क्योंकि कुड़मी समाज में नये बच्चों को उन्हीं का रूप मानते हैं अथवा दिन महिना के नाम से उसका नामकरण होता है। अत: सम्भवत: कुड़मी समाज में छह दिन में छठी तथा नौ दिन में ''नारता'' होता है। तत्पश्चात् इक्कीस दिनों के बाद 'तातरा' दिया जाता है, जिसमें बच्चों को गर्म हसियां से उसका पूरा पेट को दाग दिया जाता है, जो सम्भवत: इक्कीस दाग होता है।

नामकरण के लिए अपने वंश के लोगों के साथ ही साथ टोला-मोहल्ला के लोगों को भी निमंत्रण दिया जाता है। नामकरण के दिन सभी अपने वंश के लोगों का नाखून काटा जाता है, जिसको छूत हटना के नाम से जाना जाता है। बच्चे की मां को भी स्नानादि कराया जाता है और नये वस्त्र पहनाया जाता है। औरतोंको कहीं-कहीं ओल की सब्जी खिलाया जाता है। वस्तुत: ओल से खून का निर्माण होता है, ऐसा विश्वास है। नामकरण के अन्त में उपस्थित सभी लोग बच्चे को तेल लगाते हैं तथा अपने भी तेल लगाते हैं। बच्चे की माँ कुँआ-पोखर आदि में तेल-सिंदुर लगाती है। तत्पश्चात ही कुआँ से जल उठाती है।

बच्चे की ''मुंहजूठी'', जिसको अन्न प्रासन भी कहा जाता है। लगभग तीन महीने के बाद किया जाता है, तब तक बच्चे अपनी मां का दूध पीता है। मुंहजूठी के बाद से बच्चे को गीला भात खिलाना प्रारम्भ करते हैं। कभी-कभी कमजोर बच्चे को कपड़े का टुकड़ों के सहारे दूध अथवा भोजन खिलाया जाता है। मुंहजूठी में भी टोला-मोहल्ला के लोग आते हैं तथा नये वस्त्र आदि पहनाया जाता है, जो निमंत्रित लोगों द्वारा लाया जाता है तथा सभी आशीर्वचन बच्चे को देते हैं।

विवाह संस्कार—मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। प्रत्येक समाज का अपना-अपना नियम कानून है तथा समाज में रहकर इसका पालन किया जाता है। अलग-अलग सभी समाजों का नेग-नेगाचार तथा रीति-रिवाज है। भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न धर्म-संस्कृति है। उसी तरह वृहदत्तर झारखण्ड के कुड़मियों का अपना संस्कार-संस्कृति है। इसी कारण समाज में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनी रहती है।

किसी भी समाज में परिवार को आगे बढ़ाने हेतु स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य है। संस्थात्मक व्यवस्था या तरीका को ही विवाह कहते हैं। विवाह प्रत्येक समाज चाहे वह ''आदिम'' समाज हो या ''सभ्य'' समाज सभी के लिए एक आवश्यक अंग होता है। क्योंकि यह वह साधन है जिसके आधार पर समाज की प्रारम्भिक इकाई ''परिवार'' का निर्माण होता है। इसलिए स्वाभाविक जीवन हेतु ''विवाह'' संस्कार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए अति प्राचीन ''कुड़मी'' समाज से लेकर आधुनिक ''सभ्य'' समाज में भी विवाह का महत्व है। आर्य समाज का विवाह ''गृहस्थाश्रम'' का प्रवेश द्वार है।

अतः यह कहा जा सकता है कि समाज द्वारा मान्यता प्राप्त तरीके से स्त्री-पुरुष को ''यौन'' सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करने, उसे एक निश्चित ढंग से नियंत्रित करने तथा स्थिर रखने और परिवार को स्थायी रूप देने के लिए ''विवाह'' का आविष्कार हुआ। विवाह वह आधार है जो घर बसाता है और बच्चों के पालन-पोषण तथा आर्थिक सहायता, ''सामाजिक उत्तरदायित्व'' का बोध कराता है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से विवाह की आवश्यकता ''यौन-सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति तथा शरीर का स्वास्थ्य निर्वाह और मानसिक शान्ति प्राप्त करना है।'' विवाह स्त्री और पुरुष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराता है। साथ ही समाज द्वारा मान्यता प्राप्त किसी प्रथा या नियम के अनुसार स्त्री-पुरुषों के ''यौन सम्बन्धों'' को नियमित करने की वह संस्था है जिसका उद्देश्य ''घर बसाना'' तथा बच्चों के लालन-पालन के लिए एक स्थायी आधार प्रदान करना है।

कुड़मी समाज में टुसू मेला के बाद से ही लड़के-लड़की का पसन्द करना शुरू होता है और युवक-युवती का विवाह प्रारम्भ होता है। विवाह तय करने में एक ऐसे व्यक्ति को पकड़ा जाता है जो सामाजिक संबंधों को पक्का करने में सक्षम होता है तथा एक-दूसरे की बात को रखता है। उसको कुड़मी समाज में 'अगुआ पेछुआ' कहा जाता है। बात तय होने के बाद लड़का के घर में 'आम विवाह' का तथा लड़की के घर में 'महुल विवाह' का प्रचलन है तथा प्रत्येक अनुष्ठान में अलग-अलग लोकगीत है। लड़के की तरफ अलग तथा लड़की की तरफ अलग छामड़ा माड़वा तथा पुंड खुखड़ी प्रायः दोनों तरफ होता है।

आम-विवाह और महुल विवाह को 'अमल खावा' से भी जाना जाता है। इसके पीछे जो दर्शन है, यह कि आम फलों का राजा है तथा गुठली उसका अतिप्रिय लगता है। लड़का प्रण करता है कि जिस तरह आम की गुठली को चूसने से मिठास आता है, वैसे ही मेरी पत्नी भी मिठास से भरी हो ताकि जन्म-जन्मान्तर हम एक-दूसरे के प्रेम में बंधे रहे तथा दूसरी तरफ लड़की को महुल

विवाह के पीछे तात्पर्य यह है कि लड़की भी प्रण करती है कि महुल के रस की भांति मेरे शरीर में लावण्य रहे, जिसके रसपान से मेरा पति मुझ पर मतवाला हो जाए, जिससे हम दोनों का प्रेम-बंधन बना रहे।

अम्ल खाते समय वर-कन्या आम और महुल के पतों की टहनियों को चिबाते हैं और उसका रस मुंह से निकाल कर अपनी मां, चाची, मौसी, जेठी के हाथ में देते हैं, जिसको मां, चाची तथा जेठी अपने मुंह में लेती हैं और खाती है। यहां जो दर्शन झलकता है वह है कि माता, चाची, जेठी ने लड़का और लड़की को जो आज तक प्रेम दिया उसे लड़के से तथा लड़की से वापस चाहती है तथा एक-दूसरे के प्रेम-जाल में बंधने का आशीर्वचन देती है। अम्ल खाने के बाद लड़का अथवा लड़की मां-बाप के घर में घुस नहीं सकती। जब तक विवाह कर नहीं आते है। साथ ही साथ लड़के से प्रश्न किया जाता है कि बेटा तुम कहां जा रहे हो? लोकगीत के माध्यम से कहा जाता है कि यदि जा रहे हो तो दूध का जो तुम पर उधार है वापस देकर जाओ। तब लड़का अपनी मां को सांत्वना देता है कि मां, दूध का उधार तो वापस दिया नहीं जा सकता पर तुम्हारे लिए एक ''कामिन'' लाने जा रहा हूं। घर पर तुम्हे काम नहीं करना पड़ेगा।

कुड़मी समाज के विवाह में अगुवा-पेछुआ (मध्यस्थ) का महत्व बहुत अधिक रहता है। यह दोनों पक्षों से बातें करता है तथा एक-दूसरे की बात को पहुंचाता है। तत्पश्चात् 'बर देखा' तथा 'कन्या देखा' होता है। देखा-देखी होने के बाद बात तय होती है कि लड़की को साड़ी-गहना, रूपैया-पैसा तथा मां-साड़ी वगैरह कितना देना पड़ेगा। कुड़मी समाज में लड़की वालों को मूल्य दिया जाता है, जो सामान्यतः तीन कुड़ी, पांच कुड़ी या सात कुड़ी होता है। इसको ''पौन टाका'' कहा जाता है। मोल-तोल तय होने के बाद लड़की का बरतु होता है, जिसको पान-चन्दन कहते हैं। इसके बाद लड़की वाले लगन बांधते हैं, जिसमें अरवा चावल, सुपाड़ी तथा हल्दी हुआ करता है, जिसमें गांठ लगायी जाती है तथा जितने दिनों का लगन धरा जाता है, उतनी गांठ होती हैं। इसको लड़का सुरक्षित रखता है तथा उतने दिनों तक लड़के की बहन हल्दी-तेल उसके शरीर पर लगाती है। साथ ही साथ लड़का एक सरौता रखता है तथा घर से बाहर आना-जाना बन्द होता है। उधर लड़की का भी हल्दी-तेल माखा होता है तथा वह भी कजलोठी रखती है तब तक जब तक दोनों का विवाह नहीं हो जाता है। इसके बाद आंगन में छामड़ा बनाया है, जिसको अपने गोत्र के लोग ही बनाते हैं। अन्त में छामड़ा तैयार होने पर पुंड खुखड़ी होता है जिसको खिचड़ी बना कर प्रसाद स्वरूप सभी को दिया जाता है। तत्पश्चात् शादी करने जाने की प्रक्रिया शुरू होती है। सभी नेग-जोग होने के पश्चात् 'अम्ल' खाया जाता है।

अम्ल खाने के पश्चात् लड़के को गांव के बाहर से विदाई दी जाती है। तत्पश्चात् लड़का शादी के लिए प्रस्थान करता है। लड़का पक्ष में तथा लड़की पक्ष में बहनोई-जीजा की अहम् भूमिका रहती है जिसको समाज में लगदी कहा कहा जाता है। इस दिन विवाह करने वाले लड़के का पैर जमीन पर नहीं पड़ता है। जीजा-बहनोई गोदी करके डोली (पालकी) या बैलगाड़ी में चढ़ाते हैं। साथ ही साथ पोखर खोदने से लेकर जरूरी अनुष्ठानिक कर्म का भी पालन जीजा तथा बहनोई का होता है। जीजा को कुड़मी समाज में 'भाटु' तथा बहनोई को बहिन दामाद कहा जाता है।

लड़का जब शादी करने के लिए लड़की के घर पहुंचता है तब उसको लड़कियां जो रिश्ते में साली होती हैं, विभिन्न प्रकार के गीत गाकर लज्जित करने का प्रयास करती है। साथ ही साथ नटुआ नाच चलते रहता है। नटुआ नाच से शिवजी का ताण्डव नृत्य तथा लड़ाई का नमूना दिखाया जाता है, जिसमें ढाल और कृपाण होता है। इसके बाद लड़का को स्वागत के लिए लड़की पक्ष वाले आम डाली से पानी छिड़कते हैं तथा गोबर और चुनी का ढेला आगे-पीछे फेंका जाता है। इसके बाद गुड़ खिलाया जाता है। तत्पश्चात् लड़के को 'सरोजनी दीदी' बड़े साला की पत्नी गोद में उठाकर घर में ले जाती है, फिर साला के साथ साला धोती लुटा रस्म होता है। इसके बाद ही लड़की को छामड़ा के नीचे लाया जाता है और 'पितर पिंधा' शुरू होता है। उस समय लड़का वहां नहीं होता। 'पितर पिंधा' में सोना गहना पहनाया जाता है। पुनः लड़की को घर ले जाया जाता है, फिर उसको अम्ल खाने माहुल पेड़ के नीचे लाया जाता है। तब इधर 'हांड़ी विवाह' शुरू होता है। लड़की के दो भाई एक-एक घड़ा सिर पर लेकर आते हैं तथा दोनों घड़ों पर सिन्दूर लगाया जाता है और हांडी विवाह सम्पन्न होता है। तत्पश्चात् लड़की अम्ल खाकर वापस आती है और मण्डप में जाती है तथा अपना-अपना सेनेई एक दूसरे की छाती में सटाते हैं फिर 'सिन्दूर दान' होता है और विवाह समाज के दोनों पक्षों की सहमति से सम्पन्न हो जाता है। बारातियों को ठहरने के लिए किसी पेड़ के नीचे पुआल अथवा कम्बल दरी बिछा दिया जाता है।

कुड़मी समाज में एक और अहम् भूमिका 'मेइड़ला महतो' का है। वह समाज द्वारा प्रदत्त पारम्परिक पद होता है जिसको 'मेइड़ला महतो' कहते हैं। 'मेइड़ला महतो' के घर जा कर 'मेइड़ला' बुझा रीत होता है। इसमें विवाह के पश्चात् अपने गांव बहू को ले जाने की अनुमति 'मेइड़ला महतो' से मांगी जाती है और उसके घर जाकर मूल्य स्वरूप कुछ पैसा दिया जाता है तथा मेइड़ला महतो अपने घर में हड़िया पीने-खाने का प्रबन्ध करता है तथा विवाह का

रिकार्ड लिखित रूप में मेहड़ता महतो रखता है। इसको बड़ महतो भी कहा जाता है।

विवाह-संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् विदाई की बेला आती है तथा लड़के के पिता और लड़की के पिता दोनों 'समधी भेंट' करते हैं, जिसको 'आंताड़ लिया' कहा जाता है। 'आंताड़ लिया' यह दिखाता है कि आपके बेटे और मेरी बेटी दोनों की आत्माएं एक हो जाए जिस तरह हमारी आंत और आपकी आंत एक हो रही है। उसी तरह वर-वधू की भी आत्माएं एक हो जाएं। उन्हीं विश्वासों के साथ दोनों समधी भेंट करते हैं। कुड़मी समाज में एक अतिविशिष्ट भूमिका होती है 'नापित' (हजाम) 'फुलेइन' तथा 'कामार' की। इन तीनों के बगैर कुड़मी समाज का कोई भी संस्कार सम्भव नहीं होता है, चाहे वह जन्म-संस्कार हो या विवाह-संस्कार या मृत्यु-संस्कार। इसके बाद वर-वधू को चुमावन में बैठा दिया जाता है। तत्पश्चात् 'घर भराई' संस्कार होता है। अन्त में लड़की को घर से विदा कर दिया जाता है। गांव के सीमान्त में जाकर लड़की की बहन तथा सहेलियों के साथ 'संग छाड़ा' रीत होता है और लड़कियों को 'संग छाड़ा मूल्य' देकर नव वर-वधू को डोली (पालकी) या बैलगाड़ी में चढ़ा कर प्रस्थान किया जाता है। विदाई का क्षण बहुत ही मार्मिक तो होता ही है, अत्यन्त कारुणिक भी होता है। विदाई से सम्बन्धित लोकगीत सुनने के पश्चात् आंखों में अनायास आंसू भर जाते हैं, जिसमें बेटी अपने माता-पिता, भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी तथा सखी [illegible] और एक साथ खेली-खायी हुई जगह-जमीन छोड़कर दूसरे के अधीन होने जा रही है पराया बनने के लिए। अब एक नये सम्बन्ध की सूत्रपात करने जा रही, नये घर बसाने जा रही है और जीवन को जीने के लिए नये जगत् का निर्माण करने जा रही है। मायके की सारी सुख-सुविधाओं को सदा-सदा के लिए विस्मृत कर जा रही है, बिल्कुल अपरिचित और अनदेखी स्थान पर, जहां जीवन पर्यन्त वहीं रहकर शुख को भोगना है और दुख को झेलना है। यों तो समाज का यह नियम है—लड़कियों का जन्म होता है, दूसरे के घर की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए। अपने माता-पिता के यहां जीवन भर रहना सामाजिक दृष्टिकोण से भी वर्जित है। लड़का के घर वापस आने पर सबसे पहले लड़की की मां नव वधू को बड़े ही हर्षोल्लास से 'परअछति' है तथा 'लोहार' द्वारा निर्मित लोहे की 'खाड़ू' को बायें हाथ में पहनाती है। खाड़ू पति की मृत्यु के पश्चात ही हाथ से खुलता है। इसके बाद (लड़की को घर में प्रवेश कराया जाता है। तदुपरान्त लड़की और लड़के को गांव की सीमा से बाहर ले जाया जाता है तथा ग्राम के ओझा द्वारा उसको 'निमछा' जाता है, जिससे लड़की जिस गांव से आयी है, उस गांव का भूत

लड़की को छोड़ दे। इसके बाद लड़की-लड़कों को स्नानादि हेतु तालाब में ले जाया जाता है तथा 'घटी-लुका' या 'गुवा-लुका' रीत सम्पन्न होता है। कभी लड़की लोटे को तालाब के भीतर छुपाती है तो कभी लड़का छुपाता है तथा एक दूसरे को खोजना पड़ता है। 'गुवा-लुका' घर में खोदा पोखर में सम्पन्न होता है। लड़का-लड़की स्नान कर घर वापस आते हैं तथा नये वस्त्र धारण करते हैं तथा जिस कुआं या तालाब में उपयोग हेतु लड़की पानी लाने जाएगी, उस कुआं अथवा घाट में तेल-सिन्दूर चढ़ाना पड़ता है। इसके बाद 'बंहरत' होता है, लड़की के साथ लंगदिन आती है। लंगदिन साधारणत: 'आजी, नानी, हुआ करती है। दुल्हन के साथ लंगदिन को जाना इसलिए आवश्यक होता है कि दुल्हन को अनदेखी और अपरिचित स्थानों में जाना पड़ता है, जिस कारण उसे बहुत असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। इन असुविधाओं के निराकरण के लिए लंगदिन का जाना आवश्यक है।

प्राचीन काल में बाल-विवाह का प्रचलन करीब-करीब हर समाज में था। इस प्रचलन से कुड़मी समाज भी अछूता नहीं रह पाया था। अत: कुड़मी समाज में भी बाल-विवाह यानि बचपन में ही लड़के-लड़की का विवाह हो जाया करता था। लड़का-लड़की साथ-साथ रहने पर भी मिलना वर्जित था। इसीलिए भी लंगदिन जैसी औरतों का होना आवश्यक समझा जाता था।

विवाह-संस्कार के अवसर पर कुड़मी समाज में प्रत्येक नेग (रीति-रिवाज) के समय पर गीत गाये जाते हैं। इस विवाह को 'सलह सगुने विवाह कहा जाता है, इसको ''सुरूखुरू'' मने विवाह भी कहा जाता है। या सच्चे मन, अच्छे ढंग से सम्पन्न हुआ कहा जाता है। उसमें सोलह प्रकार के नेग (रीति-रिवाज) होते हैं तथा प्रत्येक नेग से संबंधित गीत होते हैं, जो नमूने के रूप में कुछ गीत प्रस्तुत है। यथा—

बरतु-गीत

जुहा खेले गेले बाबा, पासा खेले,
गेले ह, काहे बाबा मके हारअले।
गाइ बल भइंसि बाबा काहे नि हारअले।
गाइ बल भइंसि बेटि, घरे के लक्ष्मी ह,
तहे बेटि पराधीन ह।

लगन बांधा-गीत

(1) सने केरा अमरि रे अमरि रूपे बांधल ह,
चारब पाड ताहा चढ़ि बसे के निआमिआ।

उठअ् ग बेटि जागअ बेटि लेहु गुआपान,
आनअ् अ पना माटि भितअ् पड़से घड़ा।
सने जेमिते बाबा निखअल आउ,
सभे देखि मनअ झुआए
कइसे हामे उठअ गो ग कहसे हाम,
जागअ् कइसे हामे लेबं गुआ पान।

(2) चारि कना पखराहिं मां फुटहतअ सालुके फुल,
कनअ् फुले लगन धराए, कनअ फुले लगन धराए।
चारि कना पखराहिं फुटलअ सालुके फूल,
कनअ फुले लगन धराए, कनअ फुले हए ग विहा।
कनअ फुले हए ग विदाइ,
सलुक फुले लगन धराए
(आँकद) फुले हउअत विहा,
पारास फुले हउअत विदाइ।

दुआर लागा-गीत

(1) आउलअ सुन्दरह वर वसलअ,
पिपरअ तले,
पिपरअ चिनि बिछि खाए।
आगे कह बे तहर माए केरा नाम ह,
तबे बरअ लागअबे दुआर।
हामरिका माए केरा नाम ससुर कसइला रानी ह।
एबे सासु लागअबें दुवाइर।

(2) कति दले साजए हाथी रे घड़ा ह,
कति दले साजे बरिआत।
कति दले साजए नयना सुन्दरअ वर ह,
कुसमि रांगाल बरिआत।
दसअ दले साजए हाथी रे घड़ा ह,
बिसअ् दले साजे रे बरिआत।
तिसअ् दले साजए नयना सुन्दर वर,
कुसमि रांगाल बरिआत।
कहां हिं राखबे हाथी रे घड़ा ह,

काहांहि राखब बरिआत।
कहांहि राखबे नयना सुन्दर वर,
कुसमि रांगाल बरिआत।
गछअ् फेड़े राखब हाथी रे घड़ा ह,
छामड़ाहिं राखअ बरिआत।
घरअ माझे राखब नयना सुन्दर वर,
कुसमि रांगाल बरिआत।
किआ दिए बधवे हाथी रे घड़ा ह,
किआ दिए बधअ बरिआत।
किए दिए बधवे नयना सुन्दर वर,
कुसमि रांगाल बरिआत।
घांसअ् पाते बधबं हाथी रे घड़ा ह,
मास-भाते बध बरिआत,
कएना देए बधबे नयना सुन्दर वर ह,
कुसमि रांगल बरिआत।

हल्दी माखने के समय का गीत

(1) बाबा मरअ् बहिन सनाक थाले हलदि माखे,
हलदि बरन उठे रे।
बाबा बर बाबू खाला दनाए हलदि माखे,
केरिआ बरन उठे रे।

अम्ल खाने के समय

पअखरि खनाले बाबा निमारि रे निमारि ह,
पिड़िआ आहे अझइदा।

(2) हरदि पिसइते बहु घामि गेलि
बहु बेजाञ सुखि हेकि,
बहुक माए के कहि पाठाए देबँ
कामिनि मांगाए देतअ
बिमनि डलाए देतअ।''

(क) कनअ कनाए आंहे बाबा आमअ रे जामाअ ह,
कनअ कनाए आहे महुल डाइर।

केसे के चिनहबे बाबा आमाअ रे जामाअ ह,
केसे के चिनहबे महुल डाहर।
मनअहित चिनहबे बाबा आमाअ रे जामाअ ह,
खंचअहित चिनहबे महुल डाहर।
कने खाए बाबा आमाअ रे जामाअ ह,
कने जे खाए महुल डाहर।
बरेक माएं खाए आमाअ रे जामाअ ह,
कएनाक मांए खाए महुल डाहर।

माडवा बांधने के समय का गीत

कने तरअ बांधए झिलि-मिलि माडवा,
कने लिखे राम चनदर के कहबर।
दादा तरअ बांधए झिलि-मिलि माडवा,
भउजि लिखे / राम चनदर कहबर।

चुमान-गीत

काहे बाबा पसअले
काहे बाबा पालले ह।
बिसरल समझले,
समझल बिसरले ह।
काकरअ अनगाहि गहगहि
बाजना बाजे,
चिनहाए दे न ससुर मरअ ह,
धनिक आंगनाहि गहगहि
बाजना बाजे
जेए मके दुबअ गंजे
से हे मरअ बाप हेके।

पितर पिंधा गीत

पितरअ पिंधाइते ससुर-खुजुर मुजुर
काहे ससुर खुजुर मुजुर,
ससुर तरे घरे सामातउ-बाहारातउ
देखि ससुर नयन जुड़ावे।

बरतु (पान-चन्दन-गीत)

जा न काका जा न काका वरअ देखे,
मरअ वरअ केसनऊ सुनदर
चांदअ मलिन बेटि सुरूजअ मलिन
तरअ् वरअ् नेखे रे मलिन।
कालु जे कहले काका चांदअ
सरूजअ मलिनअ ह
आजु कइसे छामडा मलिन।
आंखि तरअ फुटए बाबा
गादा तरअ् मेटाए ह
काका छिपा मदे माति गेल।

बरि पारा-गीत

सबर नाखाक लड़हि-पाटि,
मइधे ह हलदि,
पिसइते-घसइते अंग भर साए,
अति सुकुमारि गे घनि पालखे,
चढ़ि खाए।
बाबा के तर मांग ह घनि
गटा चारि कामिनि,
बाबा मरअ हेके ह परभु,
जनमें कांगाल।
कांहा पाए देता ह परभु
गटा चारि कामिनि।

विवाह-गीत

(1) हुर हर बासेक घारअ्
बर कएना कहवरअ्,
काकरअ लिखल विधिक घटन,
बर कएना जुगल मिलन,
बर कएना गेदि जहल,
चलल विहाए। मरि देख ग,
किया से लिखल बिधिर घटन।

(2) उठु ग उठु बेटि
जागु ग जागु ह,
उठु बेटि परहु बिहाक साड़ि
बसु बेटि चनदन चउरवें।
केसे हामें जागम गअ्,
केसे हामें जागम गअ्।
केसे हामे पिंघव बिहाक साडि,
आंगनाहि चउख नाहि गअ,
मां गअ दिदि मरअ जबे चउखअ,
पुराए देताक, तबे हामे बइसबअ गअ।

(3) काहां केरा लगअ् बाबा आउए,
कहां बाबा बइसबंए गअ,
बेटि। ....नाउवा गाउएक लगअ बेटि,
आउअए खिजुर पातेक,
पेटिआ विछाए देब ताहां बेटि बइसावं ग,
बाबा। ....नाउआ कुटुम बड़ि रे निरमुनि,
हेकत, नाहि बसत पटिआ हि ह,
दामअ, दरे पटे ससुर बसे आफड मारि,
ना पटले उठि चले जाए।
फुटल फुलेक दाम ससुर दस-बिस टाका ह,
कअढ़ि फलेक सअ् टाका दामअ गअ।

(4) कनअ आंबा हरि हर,
कनअ ओबा पिअर,
कनअ् आवा सिनदुरे बरन।
से ह आंबा बिछे गेलि कनेआ कुंअर ह,
राजा बेटा घरलअ आंचर,
छाडु-छाडु राजा बेटा,
घरलअ् आंचर ह,
हामे हेकि कनेआ कुंअर,
तंहे जे हेकि धानि कनेआ कुंअर ह,
हामे हेकि बरअ रे कुंअर,
जे हे दिने तर बाबा टाका गनाए देताक,
से हे दिने हबं ह तहर।

(5) कहां भुलि पाउए ग बाबा चन्दन,
काठेर पिढ़ा।
कहां भुलि पाउए ग बाबा पढुआ जांवाइ,
बनअभुलि पाउए ग बेटि चन्दन,
काठेर पिढ़ा।
देसअ भुलि पाए ग बेटि पढुआ जावांइ,
काहां-काहां राखअबे बाबा चन्दन काठेर पिढ़ा,
काहां-काहां राखअबे पढुआ जांवाइ
बाड़िअ झाड़िज राखब बेटि चन्दन,
काठेर पिढ़ा
मांझअ घरे राखबं बेटि पढुआ जावाइ।
पाहाडअ् ऊपरे चढ़ि हांकअ मारे,
तभु बापे नाहि सुने रे।
तिन टकाक लभे बापे नाहि सुने,
दस लग के हाथ जड़े रे।
बेटि! .....दसअ कुटुमअ बडअ आपन
चांदअ मुखअ बिसरअबे गअ।
गिरिर उपरे चढ़ि हांक मारे,
तभु मांए नाहि सुने रे,
मांए साड़िक लभे मांए नाहिं सुने,
दस लग के हाथ जड़े रे,
बेटि! ....:दसब कुटुमअ् बड्अ,
आपन—
चांदअ मुखअ बिसअरबे रे।
पाहाडअ उपरे चढि हांकअ मारे,
तभु भाइए नाहि सुने रे।
साला धतिक लभे भाइए,
नाहि सुने, दस लग के हाथ जड़े रे।
बहिनि! दसअ कुटुमअ बड़अ आपन
चांद मुखअ बिसअरबे रे।

बिदाई-गीत

बलि सुना गअं जावाइ मर गर बेटि छाडिए जाउ,
बेटिक बदल सना गहना टाका कउड़ि,

लेए जाउ,
मर बेटि छाडिए जाउ।
जावांइ के देबं बाबा हाथेर जखा
छाता ग आर गडेक जखा जुता ग
दु हाल गरू बछुर देबं जतअ खुसि लेए,
जाउ मर बेटि छाड़िए जाउ।
जावांइ के देबं बाबा सनार चेनेर घडि ग,
आर हाथेर आंगुठि ग,
बाछा आमार छाड़े जाउ,
मर बेटि छाडिए जाउ।

(क) एकअ कइखे जनम लेला,
भाइअ बहिनि ग,
ढकरि पिअत मांऐक दुध।
काकरि लिखल भाइ रे,
अठारि बल कठारि,
काकरअ लिखल परदेस,
तहरी लिखलअ भाइ रे,
अठारि बल कठारि,
हामरि लिखल परदेस।
मने जदि करिस भाइ रे,
पिठेक बहिनि गअ,
परब पेछु आनबे घुराए।

× × ×

(ख) एकअ पेटे जनमिलि भाए बहिनि रे,
भाइरे-हंकरि खावले मांएक दुध।
तहरि जे खाअनभाइ रे दहि दुध भात रे,
भाइरे-हामरि खाअन बासिभात।
तहरि जे सआन भाइ रे आलंख-पालंख रे,
भाइरे-हामरि सयान छिंडा कांथा।
हामरि जे लेब भाइरे हरतकि चपा रे,
भाइरे-तहरि सेवन गुआ पान।
तहें त लेबे भाइ रे बिसए समपति रे।
भाइरे-हामे जाबं परेकर कामिन।

(ग) बाबा कांदेइ दरअबारे, बाबा गुमरि गुमरि,
डांड़बेहे बाजनदारा भाइ रा बाबा के मर बध ग
देए राखि।
मांए कांदे भितर घारे, मांए ग फुफाएं फुफाए,
डांडाबेहे बाजनदार भाइ रा मांए के मर बधअ्
देए राखि।
दिदि कांदेइ उंचअ् पिडांए दिदि मेमाइएं मेमाइए,
डांड़ा बेहे बाजनदारा भाइ रा दिदि के मर बधअ्
देए राखि।
दादा कांदइ कुलहि मुडाएं दादाक आइखें बहे रे धारा,
डांडा बेहे वाजनदार भाइ रा दादा के मर बघअ
देए राखि।
×××

(घ) सिकि माला हाला हाला मिनि निरा माला रे जाति,
आर तिन टॅाकाक लभे जे बाबा गुचाए देले मर जाति।
जाति-जाति जे मांए गअ निरा माला रे जाति,
आर मांए साड़िक लभे जे मांए गअ गुचाए देले मर जाति।
जाति-जाति जाति जे दादा गअ निरा माला रे जाति,
आर साला धतिक लभे जे दादा गअ गुचाए देले मर जाति।
तिन टकाए लभे जे बाप गअ गुचाए देले मर जाति।

धान-पुनाह— कृषि से सम्बन्धित किसी कर्म को करने से पहले नेग-नेगाचार, रीति-नीति, शुभ-अशुभ, लाभ-हानि का ख्याल कर शुभारम्भ किया जाता है। तथा उसी कर्म-फल पर शुभ-अशुभ, लाभ-हानि निहित रहता है। इसीलिए कोई भी कर्म शुभ-मुहुर्त में ही किया जाता है। जिसका प्रचलन उन आदिम मनुष्यों द्वारा स्थापित किया गया था जो एक अक्षर पढ़ नहीं सकते थे। उनको जो अनुभूति सदियों से अनुभव करने के पश्चात् ज्ञान प्राप्त हुआ उसी को आज सर्वमान्य मान्यता प्राप्त है। इसलिए कुड़मी समाज में कोई भी धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्रिया-कलाप निश्चित एवं निर्धारित समय एवं दिन को किया जाता है।''धान-पुनाह'' उसी का एक कड़ी है।

''धान-पुनाह'' को ''मुठ लेना'' नाम से भी जाना जाता है। ''धान-पुनाह'' का मतलब धरती पर धान-गिराना, बुनना, बोपण करना है। यहीं से प्रारम्भ होता है खेतों में धान बुनने की क्रिया। इस निर्धारित दिन को ''रोहिन परब'' भी कहा जाता है। साथ ही इसको रोहिणी-नक्षत्र से भी जोड़ा जाता है। कुड़मी घरों में दो

''पुनाह'' होता है पहला—''हार पुनाह'' दूसरा ''धान-पुनाह''। ''हार पुनाह'' भी निश्चित एवं निर्धारित आखाइन-यात्रा के दिन से शुरू होता है। ''हार'' को हिन्दी में ''हल'' कहा जाता है। ''पुनाह'' का तात्पर्य 'शुभारम्भ' करना है।

इस तरह ''हल पुनाह'' पहला माघ ''आखाइन यात्रा'' के दिन खेत में दक्षिण से उत्तर तीन, पाँच, सात बार चलाया या खेत जोता जाता है तत्पश्चात् घर में मवेशियों का पैर धोया जाता है और सिंघों में तेल लगाया जाता है। साथ ही मवेशियों को प्रणाम भी किया जाता है। उसी अनुरूप ''धान पुनाह'' भी होता है। ''धान पुनाह'' को ''रोहिन-परब'' कहा जाता है।

''रोहिन-परब'' जेठ महीने के तेरह दिन बाद मनाया जाता है। इसको ''निरन-मास'' का ''रोहिणी नक्षत्र'' भी कहा जाता है। इस समय धरती अत्यधिक गर्म होती है तथा विश्वास है कि बीज बोने से फलन अधिक होता है। कुड़मी लोग इस समय 'धान', 'मड़ुवा', 'गुँदली', 'उरद', 'अरहर' 'कोंहड़ा', 'कद्दू' आदि बिहन-बीज सात दिन के भीतर 'बपण' करता है यानि धरती पर डालता है। इनको विश्वास है कि इस समय का बीज बोना सफल एवं अनिष्टकारी होता है। कोई भी बीज का अंकुरण नष्ट नहीं होता एवं 'फलन' हृष्ट-पुष्ट होता है। इसको ''शष्य उत्सव'' भी कहा जाता है।

''रोहिन परब'' में, गाँव के सीमा से बाहर जाकर मिट्टी लाया जाता है, निर्दिष्ट जगह पर उसको रखा जाता है साथ ही घर-आंगन को गोबर से लीप-पोत कर शुद्ध किया जाता है तथा शाम के समय घर के मालिक नये 'टोंकी' एवं 'बठगि' में धान बीज लेकर बुनने चला जाता है। उसके लौटने पर उसका स्वागत विधि-विधान से किया जाता है तथा खुशी आनन्द के साथ ''खापरा पीठा'' खाते हैं। जिस तरह माघ महीना में 'पूस पीठा' बनता है उसी प्रकार ''रोहिन दिन'' खापरा पीठा बनता है। नियमानुसार अन्य दिन इस तरह का पीठा बनना वर्जित रहता है।

जिस मिट्टी को सीमाना के बाहर से लाया जाता है उससे गुनी-ज्ञानी लोग अपने शिष्यों को मंत्र सिखाते हैं तथा उस मिट्टी को बीज में सानकर या मिलाकर खेत में 'बपण' हेतु ले जाया जाता है। साथ ही ''दिनी बुढ़ी'' ''दिनी ठाकुराइन'' का मिट्टी को भी इस बीज में मिलाया जाता है। ''बपण'' करने के पश्चात् रात को साग खाने का नियम नहीं है। इस दिन या तो ''रोहिन फल'' अथवा मछली खाया जाता है। ''रोहिन फल'' का अर्थ प्रकृति प्रदत्त फल 1 घर की औरतें कीट-पतंग, बिच्छु-साँपों आदि अनिष्टकारी जीवों से बचने के लिए घर के चारों तरफ 'गोबर पोता' देती हैं। जिससे उक्त जीवों का प्रवेश घर में न हो। तथा परिवार सुख-शान्ति में रहे इसकी कल्पना की जाती है तथा रात भर

नाच-गान का आयोजन होता है। लोग उमंग उत्साह आनन्द के साथ आखड़ा में आकर नाचते-गाते सुबह करते हैं। पुनः दूसरे दिन अपने-अपने दैनिक कार्यों में लग जाते हैं।

शिव गाजन या चैत परब—सम्पूर्ण झारखण्ड क्षेत्र में ही शिव भक्तों का दबदबा रहा है। प्राचीन युग से लेकर आज तक घने बीहड़ जंगलों, पहाड़, पर्वतों तथा कंदराओं में शिव का मंदिर पाया जाता है। शिव ही आदि देव महादेव हैं। शिवजी का 'त्रिसूल' जितना बड़ा झारखण्ड में है उतना बड़ा विश्व के किसी भी स्थान पर प्रमाण नहीं मिलता है। झारखण्ड के कुड़मी ''भूतों'' की पूजा करते हैं। और भूतों के मालिक 'शिव' जी हैं। आज झारखण्ड में जितने प्राकृतिक देव-देवियों की आराधना होती है उसमें शिव जी का छाप किसी न किसी रूप में परिलक्षित होता है। कुड़मी समाज में जिन भूतों की पूजा होती है वे हैं—गरइआ, उतुड़ बाघुत, चाँड़ि, भानसिंग, गोसांइ राए, भीतर बुढ़ा, भीतर बुढ़ी, कुदरा, भुञ-बुरू, पाहाड-बुरू, दुआर सीनी, करम ठाकुर, दिनि बुढ़ी आदि।

सिन्धु-सभ्यता में जिस प्रोटो-शिव की पूजा होती थी उससे पहले से झारखण्ड सभ्यता में ''गौरसिंगा शिव'' की पूजा होती थी। वस्तुतः शिव का कई एक रूप झारखण्ड में दिखलाई पड़ता है। अतः यहां के लोग शैव मतावलम्बी हैं। आज जितनी पूजा-अर्चना झारखण्ड में की जाती है सभी में शिव-पार्वती का छाप किसी न किसी रूप में झलकता है। साथ ही आदि देवालय 'शिव' का ही है। झारखण्ड में 'शिव' सिंग-बोंगा के नाम से भी प्रचलित है। जिसको अनुयायी लोग बड़े ही धूमधाम से त्योहार के रूप में समयानुसार मनाते हैं। इसी का एक कड़ी 'शिव' गाजन है।

चूँकि इस समय प्रचण्ड गर्मी पड़ती है इसलिए (वृष्टि) वर्षा का आह्वान भी किया जाता है और शिव लिंग में पानी ज्यादे-से ज्यादे डाला जाता है। 'शिव गाजन' को ''चैत परब'' के नाम से भी लोग जानते हैं इसके अलावे ''कुंड़ाह खाउआ'', ''बूढ़ा बाबा का नारता'', ''झुलन परब'', ''चड़क'', ''माण्डा'' आदि नामों से भी लोग परिचित हैं।

''शिव'' उपासक को ''भक्ता'' कहा जाता है। 'भक्ता' दो प्रकार के होते हैं—(1) भक्ता (2) पाट भक्ता। भक्ता गण घर-घर जाकर शिव जी के 'प्रसाद' हेतु अन्न एकत्रित करते हैं। भक्ता निर्जला रहकर शिव की आराधना करते हैं जिसमें महिला-पुरुष सभी भाग लेते हैं। महिलाओं के लिए ''फूल खुँदी'' याने आग के अंगारों में नंगे पाव-चलना पड़ता है। भक्ता अपने पीठ के चमड़े को अँकूस से छेद कर आकाश में झूलते हैं। तथा पुष्प वृष्टि करते हैं जिसको लोग नीचे लोक लेते हैं। जमीन पर गिरने नहीं देते। इसको शिव का

उपहार समझते हैं। रात भर ''छौ नाच'' का आयोजन होता है तथा सुबह ''झूलन'' होता है। झूलन के पश्चात् लोग अपने-अपने, घर आते हैं और 'सत्तू-आम'', ''गुड़'' शिव जी को अर्पण करते हैं। तत्पश्चात् सत्तू (कुंड़हा) खाते हैं। इसके पश्चात् ही नया फल खाना प्रारम्भ करते हैं। याने आम फल खाते हैं।

विश्वास है कि इस तरह की क्रियाओं जैसे 'फूल खुँदी' झूलन आदि से किसी प्रकार का व्यथा, दर्द आदि नहीं होता है। यह शिव जी का ही आशीर्वाद है कि वह अपने भक्तों को संरक्षित एवं सुरक्षित रखते हैं। जब तक इस तरह की क्रिया-कलाप होती है शिव जी का आह्वान होते रहता है—जैसे—''शिवा भेनी में'', ''कैलास कर माहादेव'', ''माहामाहि माहादेव'', ''दाता दिगम्बर'', ''जय जगरन्नाथ काशी'', ''बैद्यनाथ'' आदि उच्चारण भक्तगण करते हैं।

करम—भादो के महिना में कुड़मी समाज की बालाएँ निर्जला रहकर नदी में स्नानादि कर शुद्ध भाव से टोकरी में बालू भरती हैं तथा उसमें कई एक प्रकार के ''दलहन'' तथा ''तेलहन'' जाति के बीज डालती हैं जिसमें मुख्यत: कुलथी, मकई, तिल, सरसों तथा मूंग हुआ करता है। इसको ''बाली उठाने'' तथा ''जाउआ उठाने'' की विधि कहते हैं। जिस डाली में जाउआ उठाती है उसे ''जाउआ डाली'' कहा जाता है। नदी से जब ''जाउआ'' डाली लेकर घर की ओर प्रस्थान करती है तब रास्ते में तीन बार जमीन में रखती है तथा घेरा लगाकर गीत गाते हुए नाचती हैं। तत्पश्चात् घर के आँगन तथा तुलसी मंडप में रखकर पुन: नाचती-गाती है और घर में प्रवेश करती है।

जिस दिन से 'जाउआ' उठाया जाता है उसी दिन से 'करम' त्योहार का आगमन माना जाता है। वृहदत्तर झारखण्ड क्षेत्र में सभी बालाओं को एक जैसा नियम पालन करना पड़ता है। कुड़मी समाज की बालाएँ कठोर नियम का पालन करते हुए इस त्योहार को सम्पन्न करती हैं। जब से 'जाउआ' उठाती हैं तब से भुना हुआ चीज नहीं खाती हैं तथा गरम चीजों का भी भक्षण नहीं करती हैं। नदी, तालाब में स्नान करते समय माथे का बाल नहीं खोलती, साथ ही बिस्तर छोड़ जमीन पर सोती हैं। शाम के समय घर के अन्दर से 'जाउआ' बाहर आँगन में निकाला जाता है तथा ''हल्दी-पानी'' से शुद्धीकरण किया जाता है इसे 'जाउआ' जगाना कहते हैं। यह क्रिया कहीं-कहीं पाँच दिन, सात दिन, नौ दिन, या ग्यारह दिनों का होता है तथा भादो एकादशी के दिन करम गाड़ा जाता है।

इसके पश्चात् 'करम' गाड़ा जाता है। 'करम' डाल काटने हेतु लड़के जंगल में चले जाते हैं और लड़कियाँ फूल तोड़ने चली जाती हैं। इसको 'फूल लोड़हा' कहा जाता है। लड़के ''करम' डाल को अपने औजार से एक ही चोट में काटते हैं तथा उसको जमीन में गिरने नहीं देते ऊपर ही लोक लिया जाता है।

दो 'करम' डाल काटकर जंगल से घर की ओर प्रस्थान करते हैं। इधर लड़कियाँ फूल तोड़कर घर लौट आती हैं और 'करम राजा' का स्वागत हेतु रास्ते पर खड़ी हो जती हैं। ''करम राजा'' का विधिवत् स्वागत कर घर के आँगन में गाड़ दिया जाता है। करम गाड़ने के समय ताँबा पैसा भी गढ़े में डाला जाता है। करम गाड़ने के पश्चात् ही 'जाउआ' डाली को उसके सामने रखा जाता है। तथा शाम को पूजा-अर्चना हेतु व्यवस्था में लग जाते हैं।

'करम राजा' को ''शिव'' तथा जाउआ डाली को ''पार्वती'' के रूप में देखा जाता है। इन दोनों का विवाह समझा जाता है तथा ''वर्ती'' सब बराती होती हैं। यह कर्म भादो एकादशी के दिन होता है। इस दिन उपवास की हुई वर्ती को निर्जला रहना पड़ता है। कुड़मी समाज में इस धार्मिक त्योहार के साथ नर्सिंग प्रशिक्षण भी बालिकाओं को दिया जाता है। बीज (जाउआ) के 'अंकुर' से लेकर करम डाल तक पालन निषेध किस तरह किया जाना है उसी तरह भविष्य में बच्चे की माँ बनने पर पालन-निषेध आदि किस तरह करना है उसका प्रशिक्षण होता है। यों तो यह त्योहार भाई-बहन की मंगल कामना हेतु उत्सव मनाया जाता है परन्तु इस बीज के 'अंकुरन' से पूरे समाज, देश की परिकल्पना की जाती है जिससे आनें वाले वर्ष में समाज एवं देश की समृधि कैसी होगी।

शाम को सभी माताएँ अपनी-अपनी बच्चियों को 'करम आखड़ा' में लाती हैं तथा पूजन सामग्री लाने हेतु 'बउगी'' या ''टोंकी'' का प्रयोग करती है।'' ''बठगी'' अथवा टोंकी में पूजन सामग्री हेतु ''खीरा'', ''गुड'', ''चिउड़ा'', ''लड्डू'', ''धूना-धूप'', ''दीया'' तथा अरवा चावल होता है। जिसको कच्चू पत्ता से ढंककर लाया जाता है। ''खीरा'' को ''खीरा बेटा'' तथा ''पति'' के रूप में पूजा जाता है। जिस लड़की का विवाह इसी वर्ष हुआ रहता है वह इसको ''खीरा बेटा'' तथा अविवाहित बालाएँ इसको पति का रूप देखती हैं। गाँव का बुजुर्ग व्यक्ति अथवा ''देहरी'', ''पाहान'', ''लाया'', ''करम'' पूजन के समय ''करम-कथा'' सुनाते हैं जिसमें दों भाइयों की कथा 'करमा' और 'धरमा' की होती है। अंत में ''करम राजा'' से बरदान मांग कर रात भर नाचती-गाती हैं और सुबह को विधि-विधान के साथ नदी या तालाब में विसर्जन किया जाता है। अन्त में 'बासी भात' के साथ 'पारना' होता है और पुरुष वर्ग के लोग खेत में 'डारी' गाड़ने चले जाते हैं। 'डारी' मुख्यतः 'भेलवा' पेड़ का होता है। जिसको प्रत्येक खेत में गाड़ा जाता है। इससे फसल को ''कीट-पतंग'' से रक्षा किया जाता है।

कुड़मी समाज में जिस लड़की का शादी इसी वर्ष हुआ होता है उस लड़की के ससुराल से ''करम उत्सव'' हेतु सामग्री पहुँचाया जाता है इसे ''करम खाड़ी'' या ''करम साड़ी'' कहा जाता है।

करम कुड़मी समाज में सिर्फ अविवाहित लड़की तथा जिसका उसी वर्ष विवाह हुआ रहता है, वैसी लड़कियों का ही पूजन माना जाता है। अविवाहित लड़की अपने इष्टदेव से 'आपन धरम, भाईएक करम' कहती है तथा पति की कल्पना करती हुई वह वरदान मांगती है और नव विवाहित लड़की अपने पति की लम्बी उम्र के साथ बच्चों की कामना करती हैं। इसी समय विवाहित लड़कियों के ससुराल से करम राजा का साजो समान आता है, जिसको 'करम साड़ी' अथवा करम खाड़ी कहा जाता है।

करम उत्सव के बारे में मयूरभंज, उड़ीसा निवासी श्री पद्मलोचन महतो के अनुसार भाद्र मास शुक्ल पक्ष षष्ठी द्वितीया को नाबालिग लड़कियां बहते हुए पानी में स्नानादि कर के सूर्य देवता को आराधना करती हैं तथा जिस टोकरी में बालू भरा जाता है, उसमें अपना-अपना वरकी गाड़ती है एवं पंचवर्ण शष्य वपन किया जाता है। अर्थात् डाला जाता है जिसमें मुख्य बुट (चना) कुरूथी मकई तिल तथा सरसों रहता है। डाली को घर तक लाने के क्रम में पांच बार रास्ता में रखती हैं तथा घेरा कर नाचती है एवं गाना—'इति-इति जावा किया किया जावा' गाती है, जिसको सुन पशु-पक्षी आदि भी मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं।

जावा डाली को घर लाकर तुलसी मंच अथवा बीच आंगन में रखा जाता है। षष्ठी से एकादशी तक यानि पांच दिनों तक जावा को देवी की तरह स्नान कराया जाता है। स्नान कराने के समय हल्दी, पानी, मैथी, गन्धों का उपयोग किया जाता है। करम साधारणत: गांव के मुखिया ही गाड़ता है अथवा जिस परिवार को करम राजा स्वयं दर्शन देते हैं। करम को करम राजा तथा जावा को जावा रानी कहा जाता है, जिसकी तुलना शिव और पार्वती से किया जाता है। करम मुख्यत: भादो-आश्विन और कार्तिक मास में मनाया जाता है। चाहे वह जितिया हो या बूढ़ी करम या दासाई करम। जितिया करमा के ठीक पन्द्रह दिन बाद शादी-शुदा औरतों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। दशहरा में भी करम गाड़ा जाता है। उसके बाद डाक संक्राइत में भी करम गाड़ा जाता है उसको 'साध खाउआ' भी कहा जाता है।

भादो एकादशी के दिन करम का उत्सव होता है। उसकी पूजा-अर्चना गांव के बुजर्ग व्यक्ति द्वारा कराया जाता है। हर लड़की को उसकी मां मदद करती है। पूजा में खीरा, बेटा का होना तथा नयी डाली तथा जलती हुई बत्ती, जिसको चौड़ा पत्ता से ढका जाता है और यह भी प्रचलन है कि लड़की जिस पूजन-

सामग्री का उपयोग करती है। साधारणतः लड़की बच्चे की मां होने के समय परहेज करती है। करम की पूजा-अर्चना के बाद रात भर नाच-गान का कार्यक्रम रहता है और सुबह हर्षोल्लास के साथ डाल पर चिउड़ा, गुड़, मिठाई आदि बांधकर विदाई देती है। करम विसर्जन होने से पहले डारी गाड़ा प्रत्येक खेत में सम्पन्न होता है। डारी मुख्यतः भेलवा की होती है, जिस तरह भेलवा डाल जलने से चिनगारी छोड़ता है, उसी तरह खेत में गाड़े जाने से दुष्ट कीड़े-मकोड़े का प्रकोप समाप्त होता है। विसर्जन के बाद 'पारना' होता है, जो बासी भात से सम्पन्न होता है।

करम उत्सव मनाने के पीछे विश्वास है कि इसी दिन बली राजा, जो कृषक का राजा था तथा दानी था, उसको भगवान ने बामन अवतार लेकर पतालपुर भेजा था। तब से कुड़मी समाज में करमा का त्योहार एकादशी के दिन से प्रचलन में आया। दूसरे शब्दों में इसके पीछे जो दर्शन है, वह यह कि भादर मास में प्रायः सभी कुड़मी घरों में अन्न की कमी हो जाती है और उस इलाके के राजा के घर करम गाड़ा जाता था, जो गांव के मुखिया भी होता था तथा वह मुखिया अनुष्ठानिक कार्यक्रम करते हुए अपनी प्रजा को खिलाता था तथा गांव के लोगों का अन्न खेतों में जब तक नहीं पक जाता, तब तक करम उत्सव तीन स्तरों में करता था और लोगों की रक्षा करता था।

करम के बारे में दूसरा दर्शन है, जब करम गाड़ा जाता है तब उसके नीचे एक तांबा पैसा डाला जाता है तथा उसके पास ''जावा रानी'' को रखा जाता है। जिसको कुड़मी समाज के लोग शिव और पार्वती का विवाह कहते हैं। जावा डाली में जो लड़की बीज डालती है उससे यह पता चलता है कि सभी लड़की के बीज का अंकुर अच्छा हुआ तब यह समझा जाता है कि इस वर्ष फसल अच्छा होगा तथा सृष्टि अच्छी होगी। यदि अंकुर अच्छा नहीं हुआ तब आकाल, अभाव और कष्ट की कल्पना करती है। यहां पर लड़कियां समाज के साथ दुनिया की कल्पना करती हैं। जब युवाजन करम डाल काटने जाते हैं उस समय मुर्गी का एक अण्डा लेते जाते हैं तथा पुनः वापस होकर एक दाग देकर मुर्गी को वापस किया जाता है। यदि उस अण्डे से मुर्गी निकल जाता है तब अच्छी सृष्टि की कल्पना होती है। यदि उससे मुर्गी (चेनगा) नहीं निकला तब विघ्न का संकेत मिलता है। अन्त में दांसाई करम के दिन खेत, पेड़, सबको चुनी छिटकर जगाया जाता है।

सम्पूर्ण झारखण्ड क्षेत्र में जो करम कथा प्रचलित है, वह दो भाइयों से प्रारम्भ होती है—'करमा और धर्मा'। करमा बड़ा होता है तथ व्यवसाय करने के लिए शहर चला जाता है। धन-दौलत कमाई कर एक दिन घर वापस आता

है, संयोग से उस दिन 'करम उत्सव' का दिन होता है। गांव के किनारे से ही अपना भाई को सूचना भेजता है कि हम आ गये हैं तथा मेरा स्वागत धूमधाम से करने का आदेश देता है। धरमा करम उत्सव में मशगूल था उनके बारे में ख्याल नहीं आया। फलस्वरूप करमा गुस्सा होकर घर आया और आंगन में गाड़ा करम डाल को फेंक दिया। करम डाल सात समुद्र लंका पार चला गया।

उसके बाद से करमा का करम बाम हुआ और धन-सम्पत्ति सब समाप्त होने लगा तथा जो रोजगार करता घर आते ही समाप्त हो जाता है। एक बार भगवान की आकाशवाणी हुई कि करम राजा को जब तक वापस नहीं लाते तब तक तुम्हारा भाग्य नहीं खुलेगा। करमा को करम राजा को लाने का सुझाव दिया। तब करमा करम राजा को मनाने चला गया। रास्ते में और लोगों को भी करम राजा का शाप मिला था। उनका भी सवाल लेकर गया और अन्त में करमा करम राजा को अपने घर भादो एकादशी के दिन लाया और पूजा-अर्चना करने लगा तब से करमा अपनी पत्नी के साथ प्रसन्नचित्त रहने लगे।

करम-गीत

कुड़मी समाज में करम पूजोत्सव के उपलक्ष्य में जावा-गीत, जावा उठाने का गीत, जावा जगाने का गीत तथा करम डाल गाड़ने से लेकर विसर्जन तक आनुष्ठानिक गीत हैं। यथा-जावा उठाते समय इस तरह के गीत बालाओं द्वारा गाये जाते हैं—

(1) सरू-सरू बालिक जाउबा उठाउलि।
अ-रे हिदेक जाउवा हुंदे डहि जाए॥
डम घारके डालिआ नदि कर बालिआ।
अ-रे हिंदेक जाउआ, हुंदे डहि जाए॥

(2) सरू-सरू बालि कर जाउआ उठाउलि,
हिदेक जउआ हुदे डहि जाए।
सिसु बालक माइ गअ बिहा नि देले गअ,
छाडइते लागे माएआजाल

(3) एतिक-एतिक जाउआ,
किआ-किआ जाउआ।
जाउवा जागालं धान न बिरूआ,
से-ह-रे दाना एक पांता सए पांता।

राड़ हरिना चरि-चरि जाए,
हरि राजा राइ मुसुअ राजाराइ।
सरवर ढुके रे पानिआ पिअब रे,
पाहाड़ेहि आहे साठि मुनिस रे।
हाए रे हाए दउरा उलटि ना जाइस रे।
से ह मिलि पिअब एक घुंटि पानी,
कानि के दे देइ घइला भइर पानी।
घइला से उठि गेला गोहुमना सांप रे,
छाड़अ-छाड़अ गोहमना बाटट हामर रे।
बाट छाड़ते बहिन किआ फुल पाउब रे,
पाअउबें भइआ रे करम गंसाइ रे।
देह, देह करम गंसाई देह आसिस रे,
भइआ मर बाढ़त सअ बरिस रे।

फूल तोड़ने के समय का गीत

(4) पाता तड़े गेरहं पतउछिआ रे।
फूला लड़हे गेल रहँ भेलंदिआ रे।

पूजा के समय का गीत

(5) आन दिने गउरि रहले कुंआर,
गउरि रहले कुंआर।
आइज गउरि विहा ले ले जाई,
गउरि विहा ले ले जाई।

इसी तरह विसर्जन के समय का गीत इस तरह गाया जाता है—

(6) (क) तएं तरे भाइ करम राजा जाबे हांसि-हांसि।
मंए तरे भाइ करम राजा जाम कांदि-कांदि॥
(ख) जाहु-जाहु करम राजा एह छअ मास।
आउअत भादर मास आनबं घुराए॥
(ग) आइज तरे करम राजा घारे-दुआरे।
काइल तरे करम राजा कांस नदी पारे॥
(घ) काकर डरे करम राजा घार सामाले।
काकर डरे करम राजा घार बाहराले॥
(ङ) लुतिक डरे करम राजा घार सामाले।
माछिक डरे करम राजा घार बाहराले॥

ऐसे ही और गीतों का जो प्रयोग किया जाता है अथवा गाया जाता है, वे निम्न प्रकार हैं—

(7) आंउरा रे आंउरा डगिया,
डाउरे छाड़ि पाते फर धरे,
बापु गअ मर निरबुधिआ,
देसे छाड़ि विदेसे बिहा देल,
जेहअ् पथे/हामे चलि जाय,
सेह पंथे दुबअ लरूआई।

(8) बाप घार उंचअ उंचअ,
ससुर घार हिनअ-हिनअ,
अ-रे किया देखि बापे बिहा देल,
हामअरि नजइर बेटि तहअरि कपाल गअ
अ-रे जड़ि रे देखि, देखि बिहा देल

(9) धान घाटे जाएरहं राएकचाक घार,
भिजिरे सिठि, भिजि सिठि दुवाराहिं ठाड़,
लेहु धनि कुलुप काठि, खलु धनि सनदुकअ,
अ-रे पिंधु ह धनि, पिंधु धनि तसरेक साड़ि,
एकअला ना साजे परभु तसरेका साड़ि ह,
आरअ रे साजे, आरअ साजे टिकअलि, सिनदुर,
टिकअलि सिंदुरा परभु, एका नाहिं साजे,
अरअ रे साजे आरअ साजे करांए रे छउआ।

(10) सबरनाखा घारे-धारे ढ़ासना ढंसिए गेला,
आ-रे आजु रे गंगा, आजु गंगा बहत खिदर,
ज, गहुमेक सतुआ कुटाउवलि,
अरे गुडअ रे बिनु, गुड बिनु सहाले न जाए,
सासे देला आलअना, ननद देला छलअना
अ-रे संइआ रे बिनु, सइआ बिनु रहले न जाए।

(11) एतेक बडअ् राइत परभु, एतेक बड़अ दिन,
अ-रे कांहा ह परभु, कांहा परभु खपअले राइत,
आखडाहि आहे धनि दसअ भाइएक बासागबत,
ताहां ह धनि ताहां धनि खोपाअलं राइत,

सेहअ कहले परभु, हामे नाहि पतिआब,
अ-रे छुआ परभु छुआ परभु तांबा तुलअसि,
तांबा तुलअसि छुले हामे मरि जाव,
अ-रे मेटि रे जातउ,
मेटि जातउ सिथेक सिंदुर,
सिथेक सिंदुरापरभु, सेहअ हामे तेजबं,
अ-रे निहि रे लेबं सइतिनि झाल,

(12) कहांहि देउरा गइआ चाराउवले,
अ-रे काहांहि देउरा पानिआ पिआए,
काहांहि रे देउरा गइवा रे गठाउवले,
अ-हरे, काहांहि ह देउरा बांसिआ बाजाइ,
रने-बने ह भउजि गइआ रे चाराउवलं,
अ-हरे माला रे दहे, माला दहे पानिआ पिआए,
बउरा तरे ह भउजि गइआ रे गठाउअलि,
अ-हरे डाइरे रे चढ़ि डाहरे चढ़ि,
बांसिआ बाजाए,
किआ लागिन ह देउरा गइआ चराउअले,
अ-रे किआ ह लागिन,
किआ लागिन पनिआ पिआए,
किया लागिन ह देउरा गइआ रे गठाउअले,
अ-रे किआ रे लागिन,
किआ लागिन बांसिआ बाजाए,
चारा लाग़िन ह भउजि गइआ चाराउअलि,
अ-रे छापर लागिन,
छापर लागिन पानिआ पिआए,
दुधअ् लागिन ह भउजि गइआ रे गठाउअलि,
अ-हरे धनि रे लागिन, धनि लागिन
बांसिआ बाजाइ।

(13) दुगअरिका धारे-धारे एकअ् घारब तांति,
अ-रे बुने रे लागल,
बुने लागल पढहिआ पांचन,

टेड़हि बाटे दिहा तांति चांदअ सुरूज,
दइआ अ-हरे आंचर रे बाटे, आंचर बाटे,
सातब, रे सइतिन,
टेड़हि बाटे देखि तांति खुलु-खुलु हांसए,
अरे आंचर रे देखि, आंचर देखि,
नएनाए बहे लर।

(14) कने मरअ लेए देताक सरू-सरू सांखा,
अ-रे कने रे मरअ,
कने मरअ आने रे सइतिन,
माँए मरअ् लेए देताक सरू-सरू सांखा,
संएआ मरअ् आने रे सइतिन,
हांसि-हांसि पहिरबं सरू-सरू सांखा,
अ-रे कांदि रे कांदि,
कांदि-कांदि परछबअ् सइतिन,
भांगि चुरि जातउ सरू-सरू सांखा,
अ-रे रहि रे जाति,
रहि जाति जुगुनति सइतिन,
बाढ़िह-साढ़िह बाहेइर करबं सरू-सरू साखा,
अ-रे घिसिआए बाहराबं,
घिसिआए बाहराबं सइतिन।

(15) बाड़ि हेठे रेल चले, गठरि बेटि जाताएं मरे,
अरे देखे रे आउला,
देखे आउला, ससुर घारेक लग,
केहु कहे काठि देबं, केहु कहे माटि देबं
अरे केहु गअ् कहे,
के हु कहे जबुनाए बहाब।
ससुर कहे काठि देबं भेसुर कहे माटि देबं,
अरे सएंआ गअ कहे,
सएंआ कहे जबुनाए बहाव।
केहु कहे तिन दिन पालन,
केह कहे पांच दिन पालन.

अरे केहु रे कहे,
के हु कहे दसअ दिन पालन।
भेंसुर कहे पांच दिन पालन,
ससुर कहे पांच दिन पालन,
अरे सएंआ रे कहे,
सएंआ कहे दसअं दिन पालन।
केहु कहे साग मांड,
केहु कहे दाइल-भात,
अरे केहु रे कहे,
केहु कहे खासिआ काटाप।
भेंसुर कहे साग मांड,
ससुर कहे दाइल-भात,
अरे संइआए रे कहे,
सएंआ कहे खासिआ काटाप।

(16) टुगअरिका धारे-धारे झरना फुटि गेल
चाला ह भउजि पानि के जाब,
डाडि ह ना संघरअए घइला ना भरअए,
अरे कने ह भउजि देता आलगाए,
टुंगरिका धारे-धारे कानहुं आउए धीरे-धीरे
अरे अखराइ ग देता,
अखराइ देता आलगाए।

(17) छुटु-मुटु दरूप पात
फुले लदअ बइद गअ,
बेटि चलअलि ससुर घार,
आजु का राइत बेटि, रहि बसिलिहा गअ,
आनि देबं पंएरिआ संदेस,
तअहरि पंएरि मांए गअ,
तअहरि उसास गअ,
मरअं घारे ससुर बेजार।
ससुरअ मरअले बेटि
दसर ससुर पाबे गअ,

काहां पावे करमेका राइत।
बछरि-बछरि माए गअ करमेका राइत गअ
कांहा पावं मरले मानुस गअ............

(18) कने तरअ् छलए कुंचि कपाट, दइआ,
अ हरे कने रे छले,
कने छले रे जाहाज।
भइआ मरअ् छलअए कुंचि कपाट
दइआ अ-हरे संआए रे छले,
सआंए छले रे जाहाज।
कन धनि सुअए कुंचि कपाट, दइआ,
अ-हरे कनअ् धनि, कनअ् धनि सुए रे जाहाज,
भउजि धनि सुआए कुंचि कपाट, दइआ,
अहरे हामे धनि हामे धनि सुअं रे जाहाज।
कनअ् धनि उठए लालि भिनसार, दइआ,
अ-हरे कनअ रे धनि, कनअ धनि उठे रे बिहान,
भउजि धनि उठए लालि भिनसार, दइआ
अ-हरे हामे रे धनि हामे धनि उठं रे बिहान।
कनअ धनि धरए बाढ़े के बाढनि, दइआ,
अ-हरे कने रे धनि कने धनि बाढ़े रे गहाइर
हामे धनि धरअए बाढ़े के बाढअइन दइआ
अ-हरे भउजि धनि, भउजि धनि बाढ़े रे गहाइर
कइसनअ् करअए सिरे के गागरि, दइआ
अ-हरे कइसनअ् आउए पानि हारि,
झलअ-मलअ् करअए सिरे के गागरि, दइहा
अ-हरे झलअकले आअए झलकले, आउए रे
पानिहारि।

(19) किआ लए सभअए सिरि बिंदा आखअडा,
अ-हरे किआ रे लअए,
किआ लए सभे रे नइहर,
संगि लअए सभअए सिरि बिंदा आखअड़ा,
अ-हरे मांएअ् रे लए सभे रे नइहर।

किआ बिनु छुटअए सिरि बिंदा आखअड़ा,
अ-हरे किआ रे बिनु,
किआ बिनु छुटे रे नइहर।
संगि बिनु छुटअए सिरि बिंदा आखअड़ा,
अ-हरे मांएअ रे बिनु,
मांएअ बिनु छुटे रे नइहर।

(20) बासन माजे गेलरहं बाबा के 'रखरिआ,
अरे हेराइ रे आउअलं,
हेराए आउअलं काने के कुंडल,
कति जले आउले-गेले,
कति जले पार हेले,
अरे कति रे जले हाराउअले कुंडल,
हांठु जले अउलं-गेलं,
कमर जले पार हेलंअ,
अरे मुड़ेक रे जले,
मुड़ेक जले हेराउलं कुंडल,
सेहअ् सुनि भइआ मरअ,
काँटा सुता लेए गेला,
अरे खजे रे लागल,
खजे लागल काने के कुंडल
जेए मरअ खजि देताक,
काने के कुंडल दइआ,
अ-हरे ताके रे देबेइ,
ताके देबेंइं छटकि ननद।

(21) कन-कन घाटे नाभअए हथि रे घड़ा गअ,
कन-कन घाटे नाभए गांएक मालिन संदेश,
जसपुर घाटे नाभअए हाथि के घड़ा गअ,
नागपुर घाटे नाभए मांएक मालिन संदेश,
किआ दे-ए बधवं हाथि रे घड़ा गअ,
किया दे-ए बधवं मांएक मलिन संदेश,
दाना दे-ए बधवं हाथि के घड़ा गअ,
दधे-पाते बधवं मांएक मालिन संदेश।

(22) गंगा रे गंगा जुड़िआ
पिआ गेल कसइला बने,
कसइला बनेते पिआ घुरिआउल,
किआ-किआ आनअले संदेश,
दसअ आंगुरे दसअ अंगुठि,
पुटिक मांछा बिछिआ सनदेस।

(23) आम पात चिरि-चिरि कागजेकर लिखा,
अ-हरे हामे गअ् बापू,
हामे बापू कतेक दिन कुंआर।
तहरि जे बिहा बेटि नानअ् बालक,
दइआ अ-हरे तरअ गअ तिरिआ,
तरअ् तिरिआ मरि हेराए गेल,
हामअरि जे तिरिआ बापु मरि हेराए गेल,
दइआ अ-हरे छाञ रे बानि, छाञ बानि देहु न देखाए,
पुरबेहिउमअड़लअ् पछिमाहिइं बरिसल,
दइआ, अ-हरे छाञ बानि, छाञ बानि,
लेगअल बहाइ।

(24) दुइअ मिलि गेले देउरा,
एका घुरि आउले,
अ-हरे काहां ह देउरा
काहां देउरा राखअले पिंठके भाइ,
हामरि जे भाइ भउजि,
बडअ् रिझुवाड़, दइआ,
अ-हरे बिजु रे बने,
बिजु बने खेले ह झुमेइर,
केथिञ भिंजलअ देउरा,
हेरेहद रांगल धतिआ,
अ-हरे केथिञ भिंजलअ तालउआइर,
सिसिरे भिजलि भउजि हेरेइद रागल धतिआ,
अ-हरे रकअते भिंजअलि,
रकअते मिंजअलि तालउआइर,

काके मारअले देउरा, काके पिटंअले देउरा,
अ-हरे काके ह देउरा,
काके देउरा करअले सिसु रांड,
काकउ निहि मारंअ भउजि,
काकउ निहि मारंअ भउजि,
काकउ निहि पिटए,
अ-हरे भाइ रे काटि,
भाइअ काटि भउजि सिसु रांड
अ-हरे लेहु ह देउरा
लेहु देउरा भउजि आपाभार

(25) बारह बछरे सासु भइआ लेंगे आउए, गअ,
हामे सासु, जावं नइहर,
हामे नाहि जानं बहु तहरि बिदाइ,
पुछि लेहु तहरि ससुर,
बारह बछरे ससुर भइआ लेंगे आउए गअ,
हामे ससुर जावं नइहर गअ,
गाँउएका मुंडा बहु नदिआ भराए गअ,
के से करि जाबे नइहर गअ,
आम पात चिरि-चिरि लउ़का बनाबं गअ,
लउकाए चापि जावं नइहर गअ,
आध नदि गेलि भाइरे मांझ नदि गेलि रे,
मांझ नदिञ लाउका भांसलअ रे
मांए के न कहिस भाइ रे बेटि भांसि गेलउ रे,
मांए त कांदति पोखराहि रे,
बाप के ना कहि्स भाइ रे बेटि भांसि गेलि रे,
बापत कांदत चाइरअ धाइर रे,
दादा के ना कहिस भाइ रे बहिन भासांए गेलि रे,
दादा कांदत चाइरेअ धाइर रे,
दिदि के ना कहिस भाइ रे बहिन भांसाए गेलि रे
दिदि त कांदति ससुर घारे रे।

(26) बांका रे बांका कुरअथि,
भुंजे बसल छटअकि ननद,
भुंजइते भुंजइते ननद डाढ़ि गेल,
लाजे हुना गेला ससुर घार,
आउ रे ननदेसु भाइ,
ननदि के लेगु ह गहड़ाइ।

(27) बादला कर दखिन सारे,
बुनलं मंए तिल,
तिले झाबार झुबुर,
फुले बउरा,
आउअहिते जाउबहिते तइड़ लिहा ग,
भइआ लागिन,
आंड़रि गांथाए दिहा गअ्।

(28) काहां-काहां फुलए पाडरि रे,
काहां-काहां फुलए नेहरि रे,
पाहाड़ेहिं फुलए पाडरि रे,
गाढ़ाएं ढड़ाएं फुलए नेहरि रे,
कनअ् डालाएं तड़बं पाडरि रे,
कनअ् डालाएं तड़बं नेहरि रे,
सने डालाएं तडबं पाडरि रे,
रूपे डालाएं तडबं नेहरि रे,
कनअ् सुताएं गांथबं पाडरि रे,
कनअ् सुनाएँ गाथवं नेहरि रे,
सने सुताएं गाथवं पाडरि रे,
रूपे सुताएं गांथबं नेहरि रे,
कने मरअ पिंधत पाडरि रे,
कने मरअ पिंधत नेहरि रे,
भइआएं मरअ पिंधत पाडरि रे,
स आएँ मर पिंधत नेहरि रे,

नावा-खाउआ—नया खानी को कुड़मी समाज में "नावा-खाउआ" कहा जाता है। यह परम्परा सदियों से मनाया जा रहा है। "करम" उत्सव के पश्चात

नया फसल आने लगता है। इसलिए उसके पूर्व ही 'नया खानी' नेग होता है। 'नया खानी' में नये अन्न के साथ 'चीड़ा दूध' आदि का मिश्रण रहता है। वंश के बड़े घरों का दायित्व रहता है कि इस ''नेग'' को विधि-विधान के साथ सम्पन्न करते हुए पूरे गाँव में जो उनके गोत्र (गोतिया) के लोग हैं सभी को खिलाना पड़ता है। खाने हेतु नये साल का पत्ता का दोना प्रयोग में लाया जाता है। और प्रसाद स्वरूप सभी सदस्यों को बाँटा जाता है। इस ''नावा खानी'' के पश्चात् ही नये फसल का अन्न ग्रहण करते हैं। यह भोग सबसे पहले सूर्य देवता को अर्पण किया जाता है। यह सम्पूर्ण कृषक समाज में है। जिसका प्रमाण हम देश-विदेशों में भी पाते हैं।

फ्रेजर ने The Golden Baw-Vol. II Part V में नया खानी के सम्बन्ध में कहा है कि ''अनाज आत्मा के रूप में संस्कारिक के तौर पर नया अनाज खाने का रिवाज, आदमी को बलि चढ़ाने का उदाहरण ढूँढने आएं तो हमें 'बर्बर' जातियों की ओर नजर दौड़ाना पड़ेगा लेकिन अनाज-आत्मा के रूप में जानवरों का सांस्कृतिक भोजन का निश्चित उदाहरण यूरोप के किसानों के बीच मिलता है, किन्तु जैसा कि अपेक्षा की गई थी अनाज-आत्मा के रूप में नया अनाज को ही संस्कारिक रूप में खाना प्रचलित है।''

''स्वेडन देश के वामलैण्ड, में किसान की पत्नी अनाज की अंतिम पुलिन्दा से एक छोटी लड़की की शकल में पाव रोटी पकाती है और इसे परिवार के सारे सदस्यों के बीच बाँट कर खाया जाता है।''

इस तरह यह कहा जा सकता है कि ''नावा खानी'' कुड़मी समाज के अलावे सभी कृषक समाज में कमोवेश प्रचलन में है। हो सकता है इसको मनाने की विधि अलग हो।

इस तरह कहा जा सकता है कि नावा खानी किसान परिवार में ही प्रचलन है, चाहे वह विदेश के ही क्यों न हो।

बांदना/सोंहराई—''बांदना'' को कुड़मी ''सोहराई परब'', भी कहते हैं। बांदना को कई एक अर्थ से स्पष्ट किया जा सकता है। बांदना का अर्थ ''बाँधना'', ''बदना'' और ''बन्दना'', से किया जाता है। यह त्योहार 'दांसाञ' पर्व के पश्चात् ही प्रारम्भ होता है। कुड़मी समाज के लोग 'दांसाञ' पर्व में पेड़-पौधा, खेत-खलिहान को विधि अनुसार जगाते हैं। जगाने के क्रम में चावल के पाउडर का घोल पेड़-पौधे, खेत-खलिहान में छिंटा मारते हैं। इसके बाद शुरू होता है सोहराई याने बांदना पर्व। ''सोहराई'' का अर्थ एक विशेष प्रकार के घास से लिया जाता है यह घास कार्तिक मास में ही उगता है। इसलिए इस घास

को तीन-तीन मुठा बनाकर ''काँचा दीया'' से लेकर ''बरद-खेला'', ''काड़ा-भिड़का'' तक छप्पर में ठीक दरवाजा के ऊपर फेंका जाता है।

कहा जाता है ''अश्विन मास'' में काड़ा (भैसा) रोता है तो कार्तिक मास में खुशी मनाता है। गृहस्वामी दूनिया से घास काट कर लाता है और मवेशियों को पेट भर खिलाता है। जिस तरह मनुष्यों के पेट भरने पर खुशी होती है उसी प्रकार मवेशियों का भी पेट भरने पर खुशी होती है। इसी क्रम में काड़ा (भैंसा) एक दूसरे के साथ लड़ाई करता है और अपना ताकत का अनुमान लगाता है। कुड़मी लोग मवेशियों को कभी भी अपने से दूर नहीं रखते। अपने बच्चों की भांति लालन-पालन करते हैं और असामयिक मृत्यु पर रोते हैं।

''काँचा दीया'' विधि से पूर्व खेती से सम्बन्धित औजारों को धो-धाकर साफ किया जाता है और पूजा-अर्चना कर निर्दिष्ट जगहों पर रखा जाता है। यों तो एक महीना पहले से घर-आँगन का लिपाई-पोताई होता है तथा मवेशियों को रखे जाने का (गहाइर) को विशेष रूप से मिट्टी भरकर समतल किया जाता है, क्योंकि साल भर ''काड़ा-गरू'' पेशाब कर गढ़ा कर देता है। साथ ही घर के चारों ओर रंग-बिरंगा भित्ति-चित्र बनाया जाता है। इस चित्र की आकृति और ''सिन्धु'' सभ्यता के चित्र से काफी मेल दिखाई देता है। परन्तु मेरा विचार है कि ''सिन्धु सभ्यता'' की भाँति ही झारखण्ड की सभ्यता थी जो दामोदर एवं कंसाबती नदी किनारे अवस्थित रही होगी। जिसका नमूना कभी-कभी परिलक्षित होती है। परन्तु इसकी सुरक्षा के अभाव में नष्ट हो गयी होगी। यदि दिल्ली आर्किलोजिस्ट विभाग के जे० जी० गोगिन की माने तो खूँटी क्षेत्र से प्राप्त कुल्हाड़ी सिन्धु सभ्यता से पाँच सौ साल पुरानी बतायी गयी है। इसी परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि झारखण्ड की भी अपनी सभ्यता थी।

बांदना त्योहार में मवेशियों को खूब खिलाया-पिलाया जाता है तथा चावल गुड़ी का 'ठप्पा' लगाकर सजाया जाता है। साथ ही रंग-बिरंगा फूलों से भी सजाया जाता है। परन्तु इसका असल फूल ''धान-बालि'' का बना 'मेडुवार' हैं जिसको सिंघों में पहनाया जाता है। त्योहार चार दिनों तक विधि-विधान के साथ मनाया जाता है। प्रथम दिन को ''कांचा दिया'' या ''काँचि दिया'' कहा जाता है। इस दिन घर आँगन को लीप कर शुद्ध किया जाता है तथा शाम को ''चावल गुड़ी'' का आल्पना बनाया जाता है जिसको ''चौक-पुरना'' कहते हैं जिसको मुख्य द्वार से गोहाल तक बनाया जाता है। अल्पना के अन्तिम छोर में गोबर के ऊपर चिरचिटि एक विशेष प्रकार का कंटिला झाड़ी रखा जाता है।

चूँकि उस दिन अमावस्या का दिन रहता है जिससे किसी प्रकार का कोई अनिष्ट न होने का विश्वास होता है। साल पत्ता में चावल-गुडी का लेप बना कर दीपक बनाया जाता है तथा बाति (सइलता) लगाकर सभी दरवाजों पर दो-दो जलाया जाता है तथा मवेशियों को जलते हुए दीपक के ऊपर से 'गोहाल' में प्रवेश कराया जाता है।

दूसरे दिन को ''गरइआ'' कहा जाता है। इस दिन ''गृह-स्वामी'' एवं स्वामिनी दोनों उपवास रहते हैं। गृहस्वामी नहा-धोकर शुद्ध होता है और खेत से आधा पका-आधा कच्चा पौधा काट कर विधि-विधान से लाता है तथा उसका ''मेड़ुवार' मवेशियों के सिंघ में लगाने हेतु बनाया जाता है। इधर गृह-स्वामिनी शुद्ध होकर नये सूप-दौरा एवं नया चूल्हा में पूजन हेतु गरइआ पीठा बनाती है। इसको गरइआ पूजा या गहाइल पूजा कहा जाता है। धान के पौधों को गहाइल में जब तक पूजा नहीं जाता तब तक 'मेड़ुवार' नहीं बनता है। इस पूजन में मुर्गी की बलि दी जाती है जो लाल और सफेद होती है। ''बाघुत'' के लिए लाल और ''धर्म'' के लिए सफेद मुर्गी (कटेइर) की बलि दी जाती है। कहीं-कहीं अपने मवेशियों के रंगों के आधार पर भी बलि की प्रथा है। यह पूजन (आड़बेरा) दो पहर के बाद किया जाता है। गाय, बैल काड़ा को तेल, सिन्दूर ठप्पा लगाकर सजाया जाता है तथा शाम के समय 'मेड़ुवार' लगा कर घर से निकाला जाता है। इस विधि विधान के साथ ही हजारों लोकगीत कुड़माली में पाया जाता है। विभिन्न नेग-नेगाचार का गीत भरा पड़ा हैं। शाम के समय बलि दी गयी मुर्गियों का भक्षण भोग के रूप में भोजन के साथ किया जाता है। जो ''मेड़वार'' सिंघों से गिर जाता है या तो उसको मवेशी खाता है अथवा दूसरे गोत्र के लोग जमा करते हैं तथा उस धान से मछली खरीद कर खाते हैं।

तीसरे दिन को ''काड़ा भिड़का'', ''बरद खेला'', ''देसालाइर'' के नाम से जाना जाता है। इस दिन भी विधि-विधान के साथ पूजा सम्पन्न होता है। इस दिन निर्दिष्ट जगहों पर ''खुँटा'' गाड़ा जाता है यदि बड़ा गाँव है तो अपने-अपने टोलों में खुँटा गाड़ते हैं तथा उसका पूजा ग्राम प्रधान की गृह स्वामिनी करती हैं। जब तक ग्राम प्रधान का काड़ा या बैल को प्रथम नहीं खुँटा जाता तब तक कोई टोलों में बरद खेला या काड़ा भिड़का शुरू नहीं होता है। गाँव के लोगों को पता रहता है कि कौन-सा काड़ा (भैंसा) या बैल (गुरू) खेल सकता है उसको धर बाँध के खुँटा में बाँध देता है तथा उससे सम्बन्धित लोक-गीत गाँव के लोग गाते हैं तथा ढोल-नगाड़ों के साथ बैल अथवा भैंसा को खेलाया जाता

हैं। गाँव के जिस गोत्र का बैल या काड़ा को खेलाया जाता है उस गोत्र की तमाम महिलाएँ अपने-अपने घर से निकलकर आती हैं तथा चुमावन करती हैं। इसी तरह से शाम हो जाता है और गाँव के 'महतो' का मवेशियों को 'गहाइल' से निकाला जाता है तब बाकी घर के मवेशियों को निकालते हैं। मवेशियों को ''निमछते'' आग के अंगारों के साथ सरसों का बीज जलाया जाता है और गाँव के बाहर निकाला जाता है। इस दिन किसी का फसल किसी का मवेशी खेत में घुसकर खा सकता है कोई कुछ नहीं कहता इसलिए इस दिन को ''देसालाइर'' कहा जाता है।

चौथा दिन 'बुढ़ी बाँधना' होता है। इस दिन विशेष प्रकार की गाय का दिन होता है उसको कहीं-कहीं खेलाया जाता है। इस दिन को ''जाहली बुला'' कहा जाता है। ''जाहली बुला'' में मर्द औरतों का पोशाक पहनते हैं तथा भगिंमा करते हुए बाजा-गाजा के साथ एक घर से दूसरे घर में जाते हैं। घर का मालिक सभी को गरइआ पीठा, माँस, हाँड़िया देकर संतुष्ट करता है और अन्त में आशीष देकर दूसरे घर में जाते हैं साथ ही गृहस्वामी अन्न दान भी करते हैं जिसको सामूहिक कार्य में लगाया जाता है। इसके पश्चात् ही ''शष्य देवी'', ''टुसु'' का हुमदुमी प्रारम्भ हो जाता है।

बांदना के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का कुछ उदाहरण प्रस्तुत है। यथा—

(1) अहिरे! रे
टाल ऊपरे टाल मंडप बनाउए
केहु त करे आउआदान रे,
केहु मागे अन-धन
कहु मागे पुत्र ह।
केहु मांगे भइसि बाथान रे।
अहिरे! रे
टाल ऊपरे टाल मंडप बनाउअलि
माहादेबे करे आउआदान रे।
दुखि मांगे अन-धन,
सुखि मांगे पुत्र-धन,
अहिरा त मांगे भहसि बाथान रे।

(2) अहिरे! रे रेहि रे रे, रे रे, रे रे, रे रे,
आर पुरूब से आउअल छाता डुबि बरदां ह
कबहु ना देखे डुभि भरि तेलअ रे।
तेलअ माखईते बरदा कांदउए
सने पटओरे पंछु लरअ् रे।
अहिरे। रे...............
एरे, ना कांदु ना खिझु छाता डुबि बरदा ह
सने पटओरे पंछु लरअ रे।
आसिन गुदअरइते करतिक मासे ह
देबं डुबि भरि तेलअ् रे।

(3) अहिरे! रेहि रे रे, रे रे, रे रे, रे रे,
आर, कनअ सिंगे लेबे बरदा, तेल-सिन्दूर ह
कनअ सिंगे लेबे मेदुआइर रे?
कहां हि लेबे बरदा टिकलि सिन्दूर ह
कनअ अंगे झकअबे चुमान रे?
अहिरे! रे ....
अरे ह बांउआ सिंगे लेबं तेलअ् सिन्दूर ह
दाहिन सिंगे लेबं मिदुआइरअ रे।
कानफेटिञ लेबं टिकलि सिन्दूर ह,
आठह् अंगे झकअब चुमान रे।

(4) अहिरे! रे रेहि रे रे, रे रे, रे रे, रे रे,
आर काकरअ सिरिजल दिआरा रे दिआरा
काकरअ् सिरिजल बाति रे।
काकरअ् सिरिजल राइ-सरिसा तेल,
बरे लागल आमासे का राति रे।
अहिरे! रे ....
आरे ह कुम्हारे का सिरजिल दिआरा रे दिआरा
ताँति का सिरिजल बाति रे,
तेलि का सिरजल राइ सरिसा तेल
बरे लागल आमासे का राति रे।

(5) अहिरे! ....
आर कनअ ह बांसे केरि अचिला
बल खंचिला ह
कनअ् बांसे केरि सुपअ ह
सुपअ ऊपरे दुब लहल ह
कनअ् गाइ चुमान जाइ रे।
अहिरे! ....
आर पाकलअ बांसेकेरि अंचिला बल
खंचिला ह
करिलअ बांसे केरि सुपअ् रे।
सुपअ ऊपरे दुबअ् लह-लह,
सिरि गाइ चुमान जाइ रे।
अहिरे! ....
सिरअमनि गइआ बाटअ् हेरए
कति खने आबंए चुमा हारि ह,
कति खने आबंइ चुमा हारि ह,
कति खने लेगबंए बाथान रे।
अहिरे! ....
आर ना कांदु नाखिजु सिरमनि गइआ ह,
सने पटरे पंछु लरअ रे,
छुसमइते आबंए चुमाहारि ह,
लरो डुबाए लेगबंए बाथान रे।

(6) अहिरे! ....
कनअ परबे रितए मुड़ा-मानकि ह,
कनअ् परबे रितए जुआन रे,
कनअ् परबे रितए खाउआसिनिक बेटा ह,
डाला से ले फुला लड़हे जाइ रे।
अहिरे! ....
देसेञ परबे रितए मुड़ा-मानकि ह
सोहराई परबे रिते जुआन रे
आर करम परबे रितए खाउआसिनिक बेटा ह,
डाला ले ले फुला लड़हे जाइ रे।

(7) अहिरे! ....
कति धुरे आहे गुरू मांएअ-बापअ ह,
कति धुरे आहे गुरू भाई रे।
कति धुरे आहे बांदना परब ह,
करअब भगवति सेवा रे॥
अहिरे! ....
बड़ब गंगाए आहे गुरू माएंअ-बापअ ह,
माझअ् गंगाए आहे गुरू भाई रे।
छटअ् गंगाए आहे बांदना परब ह,
करबे भगवति सेवा रे॥

(8) अहिरे! रे ....
कइसे जानले बरदा चेइत-बेइसाख मास,
कइसे जानले आसाड़ मासअ रे।
कइसे जानले बरदा पहिल कारतिक मास,
पंहचल सोहराइ का रितअ रे।
अहिरे! रे ....
रउदे जानले बरदा चइत-बेइसाख मास
कादाएं जानले आसाड़ मासअ रे।
जाड़े जानले बरदा पहिल कातिक मास,
पंहचल सोहराइ का रितअ रे।

(9) अहिरे! रे ....
कनअ बरनअ तरअ गातअ रे बरदा,
कनअ बरन तरअ सिंग रे।
कनअ बरनअ तर कानअ रे बरदा,
कनअ बरन दुइअ आंखि रे।
अहिरे! रे ....
बिजलि बरन तर गातअ रे वरदा,
हसुआ बरन तर सिगअ रे।
सुपलि बरन तर कानअ् रे बरदा,
चांदअ-सुरूजअ दुइअ आंखि रे।

(10) अहिरे! रे ....

काकरअ सिंगअ भाला हेकेचा न पेकेचा
काकरअ सिंगअ छाता नाइरअ रे।
काकरअ् सिंगअ भाला कानअ फेटिज घुरए
काकरअ सिंगअ करिल पुंग रे।
अहिरे! ....
काड़ा कर सिंगअ भाला, हेकेचा न पेकेचा,
भंइसि का सिंगअ् छाता नाइरअ रे।
भेड़ा का सिंगअ भाला कानअ फेटिज घुरए
बरदा का सिंगअ करिल पुंग रे।

(11) अहिरे! रे ....

कनअ ह गइआ मर एक रंगि से दुअ रंगि,
कनअ् ह गइआ सातअ रंगि रे।
कनअ् ह गइआ मरअ् एति रूपे बालकअ,
बांउए दहिने चलि जाई रे।
अहिरे! रे ....
बड़कि ह गइआ मरअ एह संगि संहअ लंगि,
मझलि गइआ सातअ रंगि रे,
छटकि ह गइआ मरअ् एति रूपे बालकअ
बाउए-दाहिने चलि जाइ रे।

(12) अहिरे! रे ....

केहु जे आनए लता बल पता ह,
केहु त आनए कादा लेटा रे।
केहु जे आनए मारिके मेरदंगा ह,
कुलहि माझे लहसले जाइ रे।
अहिरे! रे ....
भंइसि जे आनए लता बल पाता ह,
काड़ा त आने कादा लेटा रे।
बरदा जे आनए माटि के मेरदंगा ह,
कुलहि माझे लहसले जाइ रे।

(13) अहिरे! रे ....
काहाहिं उपजए सालु रे सुगा ह,
काहाहि उपजए पानअ रे।
काहांहि उपजए चउरा-चन्दन ह,
काहांहि उपजए धानअ रे।
अहिरे! रे ....
बने झाड़े उपजए सालु रे सुगा ह,
बेड़ा भुइएं उपजए पानअ रे।
देसे देसे उपजए चउरा-चंदन ह,
खिलि खेते उपजए धानअ रे।

(14) अहिरे! रे ....
कनअ गरखि भाला इड़अकि रे भिडअकि,
कनअ गरअखि बड़ि सुखअ रे।
कनअ गरअखि भाला एक डेना टुटए,
सेह डेना जाए गांगा पार रे।
अहिरे! रे ....
छागरि गरअखि भाला इड़अकि रे भिड़अकि
काड़ा गरअखि बडि सुखअ् रे।
गाइ गरअखि भाला एक डेना टुटए,
सेह डेना गंगा पारअ रे।

(15) अहिरे! रे ....
कांहाहि रे अहिरा गइआ रे चाराउअले,
कांहाहि पानिआ पिआई रे।
कांहाहि रे अहिरा गइआ रे गठाउअले,
काहां चाड़ि बांसिआ बाजाई रे।
अहिरे! रे ....
रने-वने रे अहिरा गइआ रे चराउअले,
माला दहे पानिआ पिआई रे।
बउरा तरे रे अहिरा गइआ रे गठाउअले,
डाइरे चढ़ि बांसिआ बाजाई रे।

(16) अहिरे! रे ....
नाउआ लरअना नाउआ लिपअना,
नाउआ बासने रसि मदअ रे।
नाउवा वासन रसि मदे गडअ पाखारवे,
जुगे माइगअ् रहतअ गड़ाई रे।

(17) अहिरे! रे ....
देबं-देबं लह-लह दुबअ धान,
आंचरे देबं पोछाई रे।
घरि फेरि गड़अ लागबं
जुगे माइगअ् रहत गाड़ाई रे।
अहिरे! रे ....
केहु चुमाए भाला झिरि-झिरि केंचुरा ह,
केहु चुमाए धेनु गाई रे।
केहु चुमाए भाला कानेकेरि सना ह,
केहु चुमाए दुबअ-धानअ रे।

(18) अहिरे! रे ....
किसान चुमाए भाला झिरि-झिरि केंचुरा ह,
अहिरा चुमाए धेनु गाई रे।
साइसे चुमाए भाला काने केरि सना ह,
पुतहु चुमाए दुबअ् घांसअ् रे।

(19) अहिरे! रे ....
खजा खजइते आलि पुछा-पुछइते आलि,
फानअला का घरअ कति धुरे रे।
आनगाहिं आहे भाई तुलसी का पिढ़ा ह,
ऊपरे तअ घुरे हांसा राजा रे।
अहिरे! रे ....
ना लागि दिगुआइर ना लागि कटुआर,
ना लागि अतितअ् फकिरअ् रे।
हामे जे हेकि भाई दसअ घारेक पहना,
झटअ् वेगे करअबे बिदाई रे।

(20) अहिरे! रे ....
हामे जे आउए नहिं मानत रहि,
तरअ् बरदा कहि रे पहठाइ रे।
चलु चलु अहिरा हामअरि किसाना घर,
किसाना त करत दुलार रे।
ना तके छांदे आलि ना तके बांधे आलि,
ना तके करअबं चालान रे।
हामे जे आलि भाई भगअबतिक सेवा ह,
नेगे-जगे करअबं विदाई रे।

(21) अहिरे! रे ....
कतिकअ नाचबं कितकअ् डेगबं,
कतिकअ देखअबे रंगअ् रे।
कादा छाड़ि धुरा रे उठिए गेल,
चाँदअ् सुरूजअ मलिछन रे।
अहिरे! रे ....
बारह महीना मांगे भाटअ् भिखारि ह,
आजु त मांगे दसअ भाई रे।
दसअ भाई के देअबे कांगाल निहित हअबे,
रहि जातउ जनम जुगअ नाम रे।
अहिरे! रे ....
ना लागे चइतअ ना लागे बइसाख,
ना लागे पहिल भादर रे।
आजु जे हेके भाई पहिल अगहन मास,
झटअ् बेगे करअबे विदाई रे।

(22) अहिरे! रे ....
एइसन दिसा किसान हामे नाहि देखअलि,
अहिरा सउब के राखल भुलाई रे।
ना जदि आंटलउ ना जदि जुटलउ,
सझअ् मुखे देहु न जबान रे।
अहिरे! रे ....

रागे रागाले बाबू मने खिसिआले,
कुदि सामाले भितर घारअ रे।
एहे कना टमअड़ले अह कना टमड़ले,
टमड़ि पाउले हाड़िक मदअ रे।

(23) अहिरे! रे ....
किआ लागि किसानि हुलुकअ बुलुकअ ह,
किआ सुनि टाटि कनाए ठाड़अ रे।
किआ लागि किसानि सुपे धाका देउअले,
कुदि सामाले भितर घारअ रे।
अहिरे! रे ....
गितअ सुनि किसानि हुलुकअ रे बुलुकअ ह,
बजअना सुनि टाटि कनाए ठाड़अ रे।
देएंक तेहे किसानि सुपे धाका दउअले,
कुदि सामाले भितर घार रे।

(24) अहिरे! रे ....
किआ लागिन पसअलि लालि चरइआ ह,
किआ लागिन पसअलि गाई रे।
किआ लागिन पसअलि बलिमान बरदा ह,
कनअ ठिने देबं हुमचाई रे।
अहिरे! रे ....
देखे लागिन पसअलि लालि-लालि चरइआ ह,
दूधे लागिन पसअलि गाई रे।
जतेक लागिन पसअलि बलिमान बरदा ह,
खिलि खेते देबं हुमुचाई रे।

(25) अहिरे! रे ....
कनअ् बढ़अरि घाटा घुमअरि,
कनअ् बादअरि महाजाल रे।
कनअ बादअरि संइआ सइतिनि,
जाए ना देला नइहरअ रे।
अहिरे! रे ....

चारका बादअरि घाटा घुमअरि,
रंगुआ बादअरि माहाजालअ रे।
करिआ बादरि घटा घुमअरि,
जाए ना देला नइहरअ रे।

(26) अहिरे! रे ....
काकरअ बेटा भाला बालि-बल सुगरि ह,
काकरअ बेटि अनजनि रे।
काकरअ सापे भाला अहइला पासान भेला,
केहु त डेगे समुनदरअ रे।
अहिरे! रे ....
इंद्र-सुरूजअ का बेटा भाला बलिबल सुगरि ह,
अहइला का बेटि रे अनजनि रे।
गउतमेका सापे भाला अहइला पासान भेल,
हनुमान तअ डेगे समुनदरअ रे।

(27) अहिरे! रे ....
आरअ दिन जे देख बरदा चुहुल-चुहल ह,
आजु तअ पुंछि खुसिआई रे।
काहे बल बरदा दुलु बल मुलु ह
काहे त ढिलअले भाई रे।
अहिरे! रे ....
रिमि-झिमि रिमि-झिमि पानि बरसि गेल,
आनगाएं त कादा बसि आई रे।
धीरे-धीरे बरदा पाउ फाँदअबे,
खंसि जातउ सने मेडुआइर रे।

(28) चांचर-डहरउआ

जहिलि करते समय अहिरा लोग एक घर से दूसरे घर जब प्रस्थान करते हैं, उस समय इस तरह के चांचर गीत अथवा डहरउआ गीत गाते हैं :

इ सांकट गलि रे भाई हाथि नाइ चले ह
राजाक बेटा गुपिनाथ खड़अमे चापअल ह

×××

इ छाइन के बांदरा हाउ छाइन के जाइ ह
राजाक बेटा गुपिनाथ खड़अमे चापअल ह।
×××
इ छाइन के बांदरा हाउ छाइन के जाइ ह,
छाइने-छाइने बादरा किना फल के खाइ ह।
×××
छुटु मुटु गुंडरि रे भाइ गुडगुडाले जाइ ह,
बांडदा बुढ़िअँ कहै किना मरे भातार जाइ ह।
×××
साहि-साहि के भाइ साहि खालक धान,
चाल न देखाइ देबं हाथि रकम पाज ह।
×××
इ छाइन कर झिंगा लत हाउ छाइन के जाए
बड़े घारके बहु बेटिअ झिंगा चराए खाए।

मृत्यु-संस्कार—कुड़मी समाज में जब किसी व्यक्ति का देहान्त हो जाता है, तो उसके शव को जमीन के अन्दर दफनाने की परम्परा थी, लेकिन आजकल उम्र के आधार पर तथा व्यक्तिगत वर्चस्व के कारण जलाने की विधि का भी प्रचलन में है। कुड़मी समाज में मृतक के शरीर को हल्दी और तेल से लेप किया जाता है। यदि औरत की मृत्यु होती है तो उसके पति द्वारा उसकी मांग में सिन्दूर दिया जाता है और अगर पति की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी की शांखा-चूड़ी आदि उसके साथ दे दिया जाता है और शादी के समय जो लोहे का खाड़ू पहनायी जाती है, उसको भी त्याग दिया जाता है। सम्भवतः पति की मृत्यु पर पति के साथ पत्नी की शांखा-चूड़ी देकर अंतिमविदाई दी जाती है तथा पत्नी की मृत्यु पर पति द्वारा मांग का सिन्दूर के साथ विदाई दी जाती है। मृतक शरीर को तथा व्यक्ति को मरताहार कहा जाता है, उसका नाम नहीं लिया जाता है। मुरदार कहा जाता है। जिस खाट से ढोकर श्मशान तक ले जाया जाता है, उससे 'मुरदार खाट' कहा जाता है। श्मशान तक ले जाने के क्रम में तीन बार या पांच बार चौराहे पर रखा जाता है और खाट के चारों पैर में रूई तथा खोई डाला जाता है। शव को ढोने वाले व्यक्ति भी अपनी जगह बदल लेते हैं। बदलते समय घड़ी के विपरीत दिशा में घूमते हैं। सम्भवतः कुड़मी का तमाम आनुष्ठानिक कार्य, जो घूमने-घूमाने वाला होता है, वह घड़ी के विपरीत दिशा में होता है।

उस

जब मृत शरीर को श्मशान घाट ले जाया जाता है, तब उत्तर-दक्षिण गढ़ा खोदा जाता है और उत्तर की ओर सिर कर के गाड़ा जाता है। साथ ही साथ मंगल और शनिवार के दिन मृत्यु होने पर एक मुर्गी के बच्चे को साथ में तोपा जाता है। मृतक का सिर को बायीं तरफ टेड़ा किया जाता है ताकि पूरब से सूरज को वह देख सके। वहां भी जब मृत शरीर को गड्ढे में डाला जाता है, उस समय भी घड़ी के विपरीत दिशा में ही घुमते हैं।

मृत्यु के तीसरे दिन तिल लाहना होता है। इस क्रिया को कुड़मी समाज में तेल खेइर कहा जाता है। दूर-दराज से रिश्तेदार आते हैं तथा एक-एक व्यक्ति अपने साथ घड़ा लाते हैं। दसवें दिन कमान स्नान होता है। दस दिन तक मृतक के लिए शाम को भोजन पहुंचाया जाता है। मृतक के रिश्ते में अपने वंश के जो भी बेटा-भतीजा होते हैं, वे अपना सिर मुंडाते हैं। यदि बेटे की मृत्यु हो जाती है तो उसके पिताजी सिर मुड़ाते हैं। ग्यारहवे दिन में खाना-पीना होता है। इससे पहले वंश के सभी लोग असुच रहते हैं।

कुड़मी समाज में सबसे अहम् भूमिका हित-कुटुम्ब की होती है तथा हर सामाजिक क्रिया-कलाप में एक-दूसरे के सहभागी होते हैं, इसलिए जनम-संस्कार, विवाह-संस्कार तथा मृत्यु-संस्कार में घर से खर्च नहीं होता। हित-कुटुम्ब द्वारा खाने-पीने की सारी सामग्रियों को अपने साथ लेते आते हैं, जैसे—चावल, दाल, नमक, हल्दी-खस्सी, बकरी, बैगन, विलाती, कपड़ा आदि। उसी को खाया और खिलाया जाता है। इसी तरह किसी की मृत्यु पर तिल पात में बैठना, जागर हांडी का रित होता है। कुड़मी समाज में किसी के देहातोपरान्त उसकी हड्डी कुछ दिन बाद लाया जाता है तथा घर के पीछे छोटा भांड में रखकर जमीन के नीचे गाड़ दिया जाता है। यदि मृतक को जलाया गया हो तो वैसी स्थिति में उसकी राख को गड्ढा में गाड़ दिया जाता है। उपर्युक्त सारे कार्यक्रमों के द्वारा कुड़मी समाज में मृत्यु-संस्कार का समापन होता है।

— — — —

अध्याय -5

प्राचीन भारतीय लोकायत-दर्शन एवं कुड़मियों का परम्परागत धार्मिक, दार्शनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

कहा जाता है, मनुष्य संसार का ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार जीवन-यापन करना चाहता है। वह केवल अपने वर्तमान ज्ञान के सम्बन्ध में ही नहीं सोचता, भावी परिणामों के विषय में भी सोचता है। बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। युक्तिपूर्वक तत्व ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहते हैं। (विश्व धर्म-दर्शन-छठा परिच्छेद, पृ० 165 से, बिहारी लाल वर्मा)। प्राचीन लोकायत से अति प्राचीन काल में भारत में जिस लोकायत-दर्शन का विस्तार था, उसमें भौतिकता को प्रमुख स्थान प्राप्त था। भौतिकवादी भारतीय मानव सम्प्रदाय का नाम 'लोकायत' इसलिए पड़ा कि समुदाय के लोग सारे संसार में फैले थे। लोकायत का अर्थ 'लोक' शब्द का विकसित अर्थ है—संसार और लोकायत शब्द का अर्थ दीर्घतात्मक विस्तार। इसके अतिरिक्त और भी दो शब्द लोकायत से प्राप्त होते हैं। एक यह कि लोक अर्थात् फल और आयत अर्थात् सुदीर्घ काल स्थायी अर्थात् सुनिश्चित। (चार्वाक-दर्शन—आचार्य आनन्द झा, पृ० 7)

लोकायत शब्द की निष्पति को लोक और आयत इन दो शब्दों के योग पर आधारित माना है। तदनुसार यद्यपि उस भौतिकतावादी सम्प्रदाय एवं दर्शन की निन्दा व्यक्त होती है, क्योंकि 'आयत' शब्द का अर्थ हो गया है असंयत, संयम

रहित, फलतः उच्छृंखल, किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस निछासूचक व्याख्या के उद्गम का मूल उस सम्प्रदाय का दर्शन का भौतिकतावादिता नहीं था, अपितु परवर्ती काल में आकर वास्तविक रहस्य ज्ञान के अभाव के कारण, उस सम्प्रदाय के अधिकतर सदस्यों में फैल जाने वाला अनाचार ही उसका मूल था। श्रीमद्‌भागवत गीता आदि ग्रंथों में भी वर्णित है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु स्वरूप महान् भुजाओं को धारण कर चतुर्भुज कहलाने वाले भूतात्मक परमेश्वर ने सभी बड़ी एवं छोटी वस्तुओं की सृष्टि इन भूतों से ही इसलिए की कि सबको सर्वत्र वहीं सत्ता दृष्टिगोचर हो। (श्रीमद्‌भागवत गीता 11 अध्याय का श्लोक) यहां उस अद्वैत भूतचैतन्यवाद का कितना स्पष्ट और प्रतिष्ठित रूप में उल्लेख हुआ है, जो कि एकमात्र लोकायत दर्शन की विशेषताएं हैं। (चार्वाक-दर्शन—आनन्द झा, पृ० 81) (लोक आयत) यहां आयत शब्द का अर्थ विकीर्ण के अतिरिक्त आकृष्ट संयत और नियंत्रित करने के कारण भी इसका नाम लोकायत होता है। डा० सुरेन्द्र नाथ दासगुप्त के अनुसार लोकायत का अर्थ छलयुक्त विवाद है, जल्प है, वितण्डा है और हेत्वाभास है, जिसका प्रयोग अबोध करते थे। यह कोई उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त नहीं कराते इतना ही नहीं सच्चे ज्ञान की वृद्धि भी नहीं करते, किन्तु हमें स्वर्ग और मोक्ष से दूर करते हैं। सामान्य जन ऐसे वितण्डा में रुचि रखते हैं (भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 3, पृष्ठ 470)।

किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है कि लोकायत-दर्शन और चार्वाक-दर्शन एक ही है, बल्कि इसको परवर्ती नाम चार्वाक दिया गया है। इसका वास्तविक प्राचीन नाम था 'चारवाक्-दर्शन', जिसका सरल अर्थ होता है राज-दर्शन। इसे ही जगह-जगह पर लोकायत-दर्शन कहा गया है (चार्वाक-दर्शन—आचार्य आनन्द झा, पृ० 8)। चार्वाक-दर्शन पहला नास्तिक-दर्शन है। यह दर्शन प्रत्यक्षवादी है। इसके मत में पृथ्वी, जल, तेजस और वायु ये ही चार तत्व हैं, जिनसे सब कुछ बनता है। इन्हीं चार तत्वों के मेल से बनी यह देह है। चारों तत्वों का पृथक स्थापन में चैतन्य नहीं मालूम होता, किन्तु इनके एक जगह मिल जाने से शरीर में चैतन्य उत्पन्न होकर इन्हीं भूतों में नष्ट हो जाता है। "विश्व धर्म-दर्शन —श्री साँवलिया बिहारी लाल शर्मा—सातवां परिच्छेद, पृ० 168-169)।

लोकायत-दर्शन जो चार्वाक-दर्शन माना जाता है उसमें मंत्रों की निन्दा करते हुए कहा है कि यदि यज्ञ में मरा हुआ पशु स्वर्ग जायेगा तो यजमान को उचित है कि अपने पिता की ही बलिदान क्यों न करे। जिसमें बिना किसी कठिनता के उन्हें स्वर्ग प्राप्त हो। इसके अलावे श्राद्ध-धर्म की निन्दा करते हुए कहा है कि यदि मरे हुए प्राणियों की तृप्ति का साधन श्राद्ध होता है तो विदेश जाने वाला

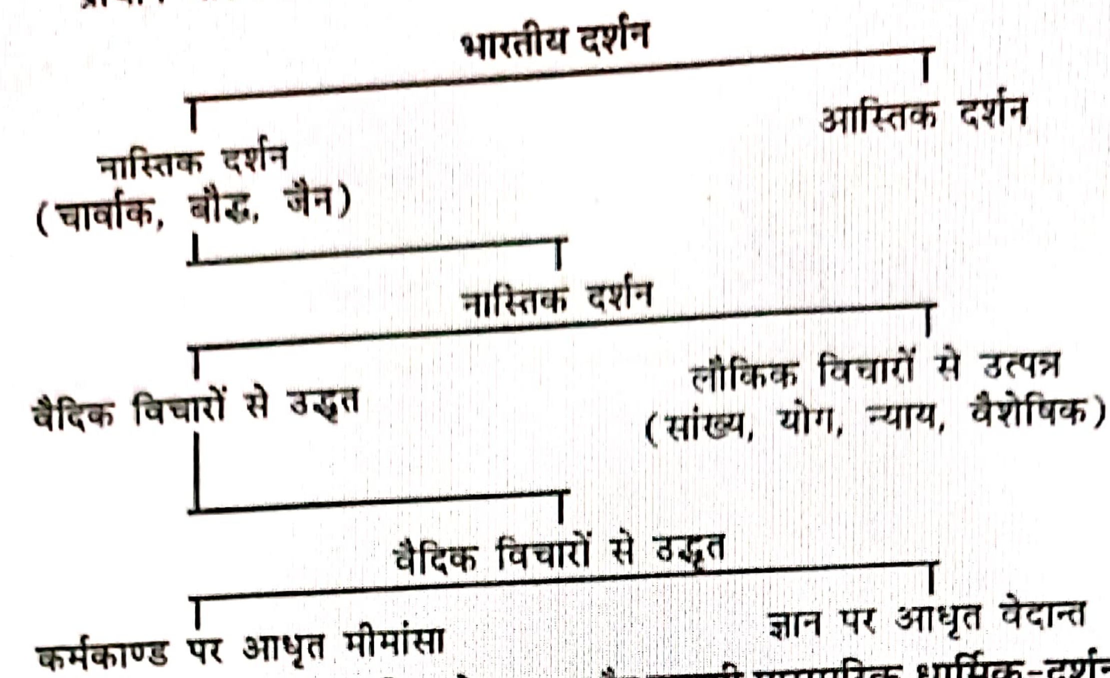
पुरुष राह खर्च के लिए सामान ढोने के बजाय किसी ब्राह्मण को भोजन करा देते या दान देते और जहां रास्ते में आवश्यकता होती वहीं वह वस्तु तत्काल उन्हें मिल जाती। श्राद्धादि का विधान ब्राह्मणों का रचा हुआ है—उनकी अपनी जीविका का उपाय है और इसी एक उद्देश्य से उन्होंने भूत जीवों के लिए प्रेत-कर्म का विधान किया है। यदि आत्मा शरीर से पृथक् होती तो स्वजनों के प्रेम से व्याकुल हो पुनः अवश्य लौट आती। (विश्व धर्म-दर्शन—सॉवलिया बिहारी वर्मा—7वां परिच्छेद, पृ० 168-169)।

प्रगति प्रकाशन मास्को द्वारा प्रकाशित दर्शन कोष में लोकायत के बारे में लिखा है कि प्राचीन भारत में एक भौतिकवादी मत लोकायत के नाम से था। इस विषय में सबसे प्रारम्भिक सूचना बौद्ध धर्म सूत्रों, वेदों तथा संस्कृत पुराणों में मिलती है। परम्परानुसार लोकायत का मूल वृहस्पति से जोड़ा जाता है। यह माना जाता है कि वेदों पर निरीश्वरवादी प्रहार चार्वाक ने किये थे और अनेक प्राचीन पाठों में इस भौतिकवाद को चार्वाक-दर्शन कहा गया है। लोकायत की ज्ञान मीमांसा संवेदनवादी है। संज्ञान का एकमात्र विश्वसनीय स्रोत इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है। (दर्शन कोष, पृ० 559)

लोकायत ने अतीन्द्रिय और अधीन्द्रिय वस्तुओं, सर्वोपरि ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग तथा नरक आदि के अस्तित्व को अस्वीकार किया। लोकायत के नीतिशास्त्र में सुखवाद का प्राधान्य है। चार्वाक शब्द की उत्पत्ति के विषय में निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है, क्योंकि इसमें दार्शनिकों में मतैक्य नहीं है। कुछ दार्शनिकों के अनुसार महाभारत में वर्णित छद्म वेषधारी चार्वाक नामक राक्षस ने इस मत को चलाया था, उसी के नाम पर इस दर्शन का नाम चार्वाक-दर्शन पड़ा। मैक्समूलर की धारणा है कि चार्वाक ऐतिहासिक राक्षस था, जिसे वृहस्पति या वाचस्पति ने सर्वप्रथम अपने दर्शन का उद्देश्य दिया था। बाल शास्त्री ने अपनी काशिका के उपोद्धता में बतलाया है कि वे चर्व का अर्थ चबाना या खाना है तथा खान-पान पर अधिक जोर देने के कारण इसका नाम चार्वाक-दर्शन पड़ा। कुछ विद्वानों के अनुसार मधुर वचन (चारूवाक्) बोलने के कारण ही यह चार्वाक-दर्शन कहलाया। संस्कृत कोष के अनुसार यदि चारू को वृहस्पति का पर्यायवाची माने तो चार्वाक (चारू वाक) का अर्थ वृहस्पति का वचन होता है तथा यह मत लोकायत मत है, क्योंकि यह लोक में व्याप्त है। भारतीय दर्शन के आधार पर इसे दो भागों में बांटा जा सकता है—

(1) नास्तिक, (2) आस्तिक-दर्शन।

(भारतीय दर्शन—इण्डियन फिलासाफी, (वोल्यूम 1, तीसरा अध्याय, पृ० 123-124—द्वारा गगनदेव गिरि)



तुलनात्मक अध्ययन : प्राचीन लोकायत और कुड़मी पारम्परिक धार्मिक-दर्शन

छोटा नागपुर, संथाल परगना या सम्पूर्ण झारखण्ड क्षेत्र में रह रहे कुड़मी का धार्मिक दर्शन और लोकायत दर्शन प्रायः समान है, जिस प्रकार लोकायत के धार्मिक दर्शन और लोकायत दर्शन में भिन्नता नहीं है। कुड़मी के धार्मिक दर्शन में भी नास्तिक छाप है। कुड़मी के धार्मिक दर्शन में भी चार तत्व विद्यमान रहते हैं—पृथ्वी, जल, तेजस, वायु, इन्हीं चारों के मेल से शरीर का निर्माण हुआ है। ऐसी धारणा है। साथ ही साथ ये यज्ञ की निन्दा करते हैं, इसलिए कुड़मी ने अपने धार्मिक संस्कारों में कभी यज्ञ आदि नहीं किया। फलतः यह मान कर चलते हैं कि यज्ञ से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती और न ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। कुड़मी प्रकृति पूजक हैं। इसलिए जमीन (पृथ्वी) की पूजा करते हुए सदियों से आ रहे हैं। अर्थात् सृष्टि-काल से ही पृथ्वी, जल, वायु, तेजस की पूजा करते हैं। उसी तरह जल तथा तेज से और वायु के मिश्रण से सृष्टि हुई मानता है।

कुड़मी के धार्मिक संस्कार से कहीं यह भी प्रमाण नहीं मिलता कि यज्ञ के अलावा मिल-जुल कर खाने के बहाने इन्होंने बलि दिया है तथा आज भी देते रहे हैं। यह सिर्फ इनके पूजा अनुष्ठान में ही होता है। जब-जब पूजा अनुष्ठान आता है, यह निश्चित है उस समय बलि देकर हर्षोल्लास के साथ खाने का एक ढोंग है। लोकायत-दर्शन ने जिन चार चीजों को लेकर सृष्टि की परिकल्पना की है, उन्हीं शक्ति को पाकर कुड़मी ने उसके साथ अनुष्ठान आदि की परिकल्पना की है तथा यह मान लिया है कि वायु, तेजस, पृथ्वी और जल से ही मनुष्य की सृष्टि संभव है।

— — — —

अध्याय -6

आर्यों एवं कुड़मियों का धार्मिक ढांचा

वैदिक बांग्ड्मय में जिन धार्मिक एवं सामाजिक विश्वासों, पद्धतियों तथा मिथकों का वर्णन हुआ है, उन्हें मानने वालों को ही उस काल में आर्य तथा उन्हें न मानने वालों को अनार्य और अयाज्ञिक कहा जाता था। जिन वर्गों के लोग वैदिक समाज से भिन्न प्रकार के मतों के अनुयायी थे, उन्हें वैदिक ऋचाओं में असुर, दास या दस्थु शिश्नदेव अयाज्ञिक 'रक्ष' या 'राक्षस', दैत्य, मायावी आदि से संबोधित हैं।[1]

इसके साथ ही साथ चार मुख्य युगों का पदार्पण होता है—

(1) वैदिक युग

(2) ब्रह्माणिक युग

(3) बौद्ध युग

(4) ब्रह्माणिक पुनर्निर्माण युग[2]

ब्राह्मण काल के पूर्व आर्यों की जो संस्कृति है उस पर अभी भी मतभेद प्रतीत होता है, क्योंकि जानकारी प्राप्त करने के क्रम में जो प्रमाण मिला है, उसका अभाव है। प्राचीन भारत का इतिहास तो गौरवपूर्ण रहा ही है, जिससे स्पष्ट है कि इस देश में अनार्य रहते थे या इसे अनार्यों का देश कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

---

1. (वैदिक जाति का निवास-स्थान और भारतीय संस्कृति का स्वरूप—डा० शंभूनाथ सिंह, अध्याय 2, पृ० 27)
2. (एनसियंट एण्ड हिन्दू इण्डिया : जे० टालवायज व्हीलर, पृ० 1-2)

भारत में आर्यों के आगमन के बारे में भी विद्वानों का मतभेद देखने को मिला है। किसी विद्वान ने उन्हें इसी देश के निवासी होने का दावा किया है, तो किसी ने यह अनार्यों का ही कोई ग्रुप रहा होगा, ऐसा अनुमान कर इतिहास की रचना की है। लेकिन जहां तक मेरा विचार है बाहर से इस देश में आये हैं और अपना राज-पाठ जमाने के ख्याल से इन्होंने अनार्यों की सारी संस्कृति नष्ट कर डाली।

ब्राह्मण काल के पूर्व आर्यों की जो संस्कृति थी, संभवतः अनार्यों से मिली नहीं होगी, क्योंकि अनार्यों की संस्कृति से आर्य संस्कृति मेल नहीं खाती है। जिन विद्वानों ने आर्यों और अनार्यों की संस्कृति से मेल कराने की कोशिश की अथवा मिलाने का प्रयास किया, उससे वह तो सिर्फ अनार्यों को ठगने का प्रयास किया। अनार्य को द्रविड़ के रूप में भी जाना जाता है और इसके देवता जो सर्वश्रेष्ठ थे अथवा हैं, वह शिव हैं जो प्रकृति के देवता हैं, इसी के समानान्तर आर्यों ने ब्रह्मा और विष्णु को खड़ा किया तथा अनार्यों का विध्वंस कर शिव को भी अपना देवता मानने लगे हैं।

ब्राह्मण काल के पूर्व यानि सिन्धु घाटी सभ्यता के समय द्रविड़ लोग प्रकृति की पूजा करते थे (और अभी भी कर रहे हैं) परन्तु आर्यों ने उस प्रकृति को देवता का रूप दिया।

ए० सी० क्लेटोन ने अपनी पुस्तक ऋग्वेद और वैदिक रिलिजन में कहा है कि—आर्य अफगानिस्तान एवं उत्तर भारत के आगे कोई क्षेत्र में रहा करते थे। उनके मर्द और औरतों के शरीर का रंग गोरा था और वे घोड़ा और गाय-भैंसों के साथ घूमते थे। उनकी प्राचीन कहानियाँ जो आज हमारे पास उपलब्ध है, उनके द्वारा व्यवहृत शब्दों से उनके पूजा-पाठ संबंधी रिवाजों से उनके प्राचीन काल के जीवन एवं चिन्तन के बारे में काफी चीज जानी जा सकती है। वे साहसी, उग्र और उद्‌यमशील नस्ल के लोग थे। इसी जाति के कुछ और लोग थे, जो अधिक साहसी रहे होंगे। कई एक पीढ़ियों उन्होंने एक लम्बी यात्रा तय किया और उत्तर पश्चिम कोण से भारत में प्रवेश किया। इन लोगों ने अपने अपने आप को आर्य कहा। आर्य शब्द का अर्थ स्वजाति होता है और वे इस देश में पहले से बसे हुए आदिवासियों से बिल्कुल भिन्न थे।[1]

इन्होंने इस ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया। वस्तुतः आकाश, सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, पानी ये सभी देवता के रूप में जाना जाने लगे। प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के लेखक रतिभानु सिंह नाहर ने यह

---

1. (दि रिलिजन एण्ड वैदिक रिलिजयन, पृ० 3)

प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सिन्धु घाटी सभ्यता आर्यों की ही सभ्यता थी तथा आर्य लोग ही इसके जनक थे, परन्तु यह तथ्यहीन जान पड़ता है। साथ ही कुछ उदाहरण के साथ भी प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है, जिनमें सिन्धु घाटी निवासी यानि द्रविड़ लोगों की संस्कृति और आर्यों की संस्कृति में समानता है।

छोटा नागपुर के कुड़मी भी सिन्धु घाटी के निवासी की तरह ही जीवन-यापन करते हैं तथा गीत, लोककथा के आधार पर उन जगहों का वर्णन मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि एक समय में ये शायद कुड़मी भी उसी आस-पास के लोगों के साथ रहे होंगे, क्योंकि उनके रीति-रिवाज, जो प्राचीन सिन्धु घाटी वासियों की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाज है, उससे थोड़ा भी भिन्न नहीं जान पड़ते। कुड़मी भी सदियों से प्रकृति-पूजक रहे हैं तथा आज भी प्रकृति के ही पूजक हैं। ये शैवभक्त हैं। सिन्धु घाटी निवासी एवं कुड़मी के सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनैतिक ढांचा को देखा जाए तो यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये सिन्धु घाटी के आस-पास रहे होंगे। हो सकता है कि ये सिन्धु घाटी सभ्यता के जनक रहे हों, क्योंकि इतिहास उन घटनाओं के वृत्तान्त को बताता है जो महत्वपूर्ण तथ्यों को चुनकर अतीत का पुनर्निर्माण करता है। परन्तु कुड़मी जाति का इतिहास किसी भी इतिहासकार के सम्पर्क में नहीं आया तथा इसकी कोई चर्चा किसी विद्वान ने नहीं की। फलस्वरूप इस इतिहास से कुड़मी जाति अछूत रही। सम्भवतः ऐसे ही लोगों पर अतिक्रमण होता है और ये सभ्यता के जनक होते हुए इन्हें यह मान्यता नहीं मिली। इसी तरह ये अपनी मूल संस्कृति को भूल जाते हैं और दूसरे को अपनाने का प्रयास करते हैं। जहां तक मेरा विचार है, ये लोग भी सिन्धु घाटी वासियों के साथ रहे हैं अथवा उस समय पूरे झारखण्ड से लेकर सम्पूर्ण भारत में एक ही प्रकार की संस्कृति व्याप्त थी, क्योंकि इनके जो शब्द हैं ठीक सिन्धु घाटी सभ्यता के समय से मिलते हैं। जैसे—हड़प्पा, ये शब्द कुड़मी के हाड़ा-हुपा यानि ऊंचा-नीचा से माना जा सकता है। खुदाई के समय वह भी जगह ऊंची-नीची थी। (प्राचीन भारत का इतिहास) उसी तरह हड़प्पा भी कुड़मी हावा-हप्पा एक प्रकार का खेल से शब्द-बोध होता है। यानि हाथों से मचान बनाकर किसी को चढ़ाना या एक जगह से दूसरी जगह ले जाना है।

आर्यों तथा कुड़मियों का धार्मिक जीवन—आर्यों का जो धार्मिक जीवन-काल रहा था, वह कुड़मियों से भिन्न था, परन्तु समानता लाने के लिए रूप परिवर्तन किया गया है।

मातृदेवी की पूजा—कुड़मी मातृ देवी की पूजा करते हैं। पृथ्वी इनकी मां है तथा इनकी पूजा किया करते हैं। चाहे वह 'भुञ बुरू' के नाम से हो या महामाया। सिन्धु घाटी वासी भी इनकी पूजा करते हैं। इसी को आर्यों ने काली, जगदम्बा आदि का रूप प्रदान किया।

शिवपूजा—कुड़मी शिव-भक्त हैं, क्योंकि प्रकृति पूजक होने के नाते प्रकृति देव शिवजी को बड़े ही धूम-धाम से पूजा-पाठ करते आ रहे हैं। चाहे वह शिव गाजन हो या करम ठाकुर के रूप या पाहाड़ बुरू हो। सिन्धु घाटी निवासी भी इसकी पूजा करते थे, जिसको "प्राटो शिव" से जाना जाता है। इसको आर्यों ने उपर्युक्त वर्णन के आधार पर अपना देवता मान लिया और पूजा-पाठ करना शुरू किया। अतः आज शिव आर्यों का देवता हो गया।

कुड़मी योनि की पूजा भी करते हैं, क्योंकि शिव लिंग हैं, वहीं योनि भी उपस्थित है। यानि कुड़मी योनि की पूजा भी उसी ढंग से करते आ रहे हैं, जैसे लिंग की। आर्यों ने कभी इस तरह की पूजा नहीं की, जबकि सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर अभी तक इसकी पूजा होती रही है। कुड़मी के जब चोट लगता है या गिरता है तो अनापस हो योनी का उच्चारण करता है।

पशु-पूजा—कुड़मी पशुओं की पूजा करते हैं। बैल, भैंस, कबूतर आदि जिनकी सिन्धु घाटी सभ्यता के समय पूजा की जाती थी। आर्य पशु-पूजा करते हैं, परन्तु ये गाय को माता के रूप में पूजते हैं। गाय का महत्व आर्यों के साथ था तथा बैल का अनार्यों के साथ।

सूर्य-पूजा—कुड़मियों के सबसे बड़ा देवता सूर्य हैं, इसीलिए कुड़मी के घर में सबसे पहले सुबह उठकर दरवाजा में गोबर घोल कर सूर्य की आकृति बनाया जाता है और प्रकाश की भांति जल छिंट दिया जाता है। दूसरे रूप में धर्म के नाम से तथा सुरजाही पूजा के नाम से भी जानते हैं। कुड़मी उगते हुए सूर्य की पूजा करते हैं।

वृक्ष-पूजा—झारखण्ड के कुड़मी वृक्ष-पूजा करते हैं, क्योंकि ये प्रकृति-पूजक रहे हैं। साथ ही किसी गांव को बसाने के लिए पुराने वृक्ष के सामने अपना पारम्परिक रीति के अनुसार गांव बसाने के लिए प्रकृति देव से अनुमति प्राप्त करते हैं, जिसमें मुख्यतया साल का वृक्ष या पुराने पेड़ आदि भी हुआ करता है, जो पुराने हैं। इसी तरह पीपल के वृक्ष को शम आर्यों ने माना है जो इससे पहले यहां के अनार्यों ने जान चुका था। पीपल गांव में अशुभ माना जाता था, क्योंकि पीपल जंगलों में नहीं होता है।

नदी-पूजा—कुड़मी समाज में प्रचलित नहीं था। मात्र गांव के कुआं, तालाब आदि ही पूजनीय था, जबकि कुड़मी का निवास नदी के किनारे ही रहा

है। सिन्धु घाटी के निवासी भी नदी की पूजा करते थे। इसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परन्तु इतना अवश्य है कि वे स्नान गृह की पूजा करते थे, ऐसी मान्यता इतिहासकारों का मानना है, परन्तु यह सटीक नहीं लग रहा है कि वे नदी की पूजा करते थे। प्राचीन भारत के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहासकारों के अनुसार ये स्नान-गृह की पूजा करते थे, उसकी यह मानना है। परन्तु मेरे विचार से अगर स्नान-गृह अथवा नदी देवता के रूप में पूजा होती तो शायद यह परम्परा कहीं-न-कहीं परिलक्षित होती है। हाँ, यह मानना होगा कि सामूहिक उत्सव एवं शुभ मुहूर्त में एक साथ स्नानादि करते होंगे।

आर्य नदी की पूजा करते हैं तथा जल की भी पूजा करते हैं, जो उनके अनुसार वरुण देवता का आविष्कार बाद में हुआ।

दाह-संस्कार—झारखण्ड के कुड़मी मृतक के शरीर को गाड़ते हैं। सभी कुड़मी समाज के लोगों के पास अपना-अपना गोत्र के अनुसार मृतक शरीर को गाड़ने का काम घाट में हुआ करता है। वह भी यदि दिन के अनुसार मरने पर किसी मुर्गी के बच्चे को मृतक के साथ गाड़ दिया जाता है। मृतक के सिर तरफ मिट्टी का लोधा दिया जाता है। आज-कल उम्र के हिसाब से जलाते भी हैं।

आर्य मृतक को जलाते हैं। जैसा अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्य अपने मृतक शरीर को लकड़ी से जला देते हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग भी मृतक को गाड़ते थे, क्योंकि इतिहास से ज्ञात होता है कि खुदाई में सिन्धु घाटी वासी मुर्दे को गाड़ते थे और गाड़ने का रिवाज मूल निवासियों में था।

शारीरिक बनावट—आर्य लोगों ने जब मध्य एशिया छोड़ा और उनका एक दल पश्चिम से भारत की ओर मुड़ा और खैबर घाटी पार करके भारत में प्रवेश करता है। इस मार्ग से प्राय: कई एक बार आर्यों के आने का सिलसिला जारी रहा। फलस्वरूप आदि निवासी द्रविड़ इन लोगों के साथ अधिक दिन तक टिक नहीं सके। साथ ही आर्यों के साथ महिलाओं के आने का प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु अनार्य पुत्री के साथ विवाह रचाने का प्रमाण मिलता है। इस तरह जो मूल निवासी थे, उन लोगों में रक्त, शक्ल, ऊंचाई, रंग, बनावट में आर्यों जैसा हो गया। इसी तरह से ब्रह्मपुत्र की घाटी से मंगोल जाति के लोग बंगाल में प्रवेश किया और बस गये, परन्तु कम संख्या में आने के कारण द्रविड़ों को खदेड़ नहीं सके। यही कारण है कि बंगाल के लोगों में द्रविड़ और मंगोलों का सम्मिश्रण है। इसी तरह यूनानी, शक, पार्शियन, हूणों आदि का प्रवेश इस देश में होता

रहा। फलस्वरूप रंगभेद, शारीरिक बनावट में भिन्नता दिखाई देती है। यो तो इस देश में ''निग्रो'' आस्ट्रिक, किरात, द्रविड़ इस देश में पहले से आये थे।

अधिकांश आर्य पंजाब, राजस्थान में बस गये। फलस्वरूप यहां के लोगों की शारीरिक बनावट, कद, लम्बाई में अधिक अन्तर पाया जाता है। भारत में इतनी जातियों का प्रवेश हुआ कि इनके वास्तविक संरचना के बारे में जान पाना कठिन है। आठवीं शताब्दी के आस-पास अरब, अफगान और मुगलों का प्रवेश होता है। इन लोगों ने सिंध में अपना आधिपत्य बनाया। फलस्वरूप वहां के हिन्दुओं की संख्या कम होती गयी, क्योंकि ये लोग मुसलमानों के खलीफा के सेनानायक मुहम्मद क़ासिम के नेतृत्व में सिंध आये थे। अरब लोगों के लगभग तीन सौ वर्ष बाद तुर्क लोगों ने खैबर घाटी से होकर भारत में आक्रमण किया, जिसमें मुहम्मद गजनी ने मुख्य रूप से भूमिका निभाई और इस तरह मुसलमानों का कई एक बार हमला होता रहा। देखते ही देखते उत्तर भारत में इनका राज्य स्थापित हुआ।

इतिहास साक्षी है कि यूरोपीय जातियों का प्रवेश मुख्यतः खैबर घाटी से हुआ। उसके बाद पन्द्रहवीं सदी के आस-पास समुद्र पार करके भी बाहर से लोग आये, जिसमें मुख्यतः पुर्तगाल, डच, फ्रांसिसी और अंत में अंग्रेज आये हैं।

इस तरह यहाँ के निवासियों में विभिन्न जातियों का मिश्रण हुआ। आर्य लोग खैबर की घाटी से पंजाब में घुसे थे, इसलिए दिल्ली तक लोग गौर वर्ण एवं लम्बे हुए। नाक लम्बी, ललाट ऊंचा होता है। आर्य लोगों का उत्तर प्रदेश में घुसने का प्रमाण मिलता है, परन्तु आदि निवासियों को ये लोग खदेड़ नहीं सके थे। फलस्वरूप इन लोगों में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं दिख पड़ती। इन लोगों का खून ज्यों का त्यों रहा तथा दिल्ली से ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों लोगों का कद छोटा, नाक चौड़ी तथा रंग सांवला दिखाई देता है। मूल निवासियों में जो द्रविड़ जाति के लोग थे। वे पर्वतों में छिप गये। पकड़ में नहीं आये, उनका कद रंग-रूप ज्यों का त्यों रहा।

कुड़मी चूंकि आदि निवासी थे, इसलिए इन लोगों की संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। यदि हुआ भी है तो इनमें नाममात्र का ही हुआ है, अपितु वहीं चौड़ी नाक, सांवला वर्ण तथा मंगोलाएड प्रजाति का मिश्रण हुआ है, क्योंकि संथाल और कुड़मी में जो बच्चों को तातरा दिया जाता है, उस समय पेट के नस का जो रंग होता है, यह सिर्फ मंगोलाएड प्रजाति में ही मिलता है। उसका रंग नीला होता है, क्योंकि ब्रह्मपुत्र की घाटी होकर मंगोलाएड प्रजाति के लोग प्रवेश· किया था, उसका प्रमाण प्राचीन इतिहास में मिलता है, जिसका

बंगाल में तथा बिहार से सटे क्षेत्रों में इनका प्रभाव पड़ा, परन्तु अधिक दूर तक ये फैल नहीं सके। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ये यहां के मूल निवासियों के साथ टिक नहीं पाये। फलस्वरूप आर्य का प्रभाव जिस अनुपात में पंजाब, हरियाणा आदि राज्यों में हुआ उस अनुपात में मंगोल प्रजाति का प्रभाव कम हुआ है।

ब्राह्मण-काल से पहले जो वैदिक आर्य थे, उनमें बहुत देवताओं का अनुभव था, परन्तु सभी देवताओं में एक सर्वशक्तिमान है, इसकी भी अनुभूति थी। एनसियेंट एण्ड हिन्दू इण्डिया में टालवायज ह्वीलर ने कहा है—जिस प्रक्रिया से वैदिक आर्यों का प्रश्न करने की बुद्धिमत्ता कई एक देवताओं से एकेश्वर की ओर अग्रसर हुआ। वह उनके धार्मिक विकास के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण विषय है एवं यह ऋग्वेद के स्त्रोतों में काफी स्वच्छता के साथ प्रदर्शित होता है। आर्यों का धार्मिक विश्वास चेतन से ही बना है। मानव के इतिहास में भारतीय धार्मिक चिन्तन की प्रगति एवं विकास बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान इसलिए रखता है कि यह प्राकृतिक धर्म से जुड़ा हुआ विचार एवं भावनाओं को दर्शाता है साथ ही इसका विकास का विस्तार कोई भी दूसरे विश्वास से अधिक फैला हुआ है।

"विभिन्न आदिवासी समुदाय एक ही समाज में समाहित थे।" ये कोलारियन रेस के कहे जाते थे।[1]

इस तरह से विभिन्न विद्वानों ने अनार्यों का ही विभिन्न समुदाय मिलकर आर्य का रूप दिया गया हो ऐसा महसूस करते हैं। इस सम्बन्ध में कुन्ट ने कहा है—दि डिफरेंट ट्राइब्स हैड बीन फ्यूज्ड इन टू वन कमन्यूटी।[2]

ऐसे ही आर्यों को जो धार्मिक-सांस्कृतिक विश्वास रहा है, उससे कहीं कुड़मी का भिन्न हैं, क्योंकि कुड़मी ने कभी विभिन्न देवताओं के बारे में परिकल्पना नहीं की है। फलतः इनका वही प्रकृति पूजा छोड़कर किसी अन्य देवताओं की शरण में आये हैं। ऐसा कोई सटीक उदाहरण नहीं है। भले ही आज उन विभिन्न जगहों की पूजा विभिन्न ढंग की प्रकृति पूजा को देवता का रूप आर्यों ने दिया हो। परन्तु उनके धार्मिक विश्वास और कुड़मियों के धार्मिक विश्वास में आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई देता है।

---

1. (एनसियेंट एण्ड हिन्दू इण्डिया—टालवायज ह्वीलर, पृ० 1)
2. (आर्यन सिविलाइजेन इन इण्डिया—पृ० 1)

आर्यों ने विभिन्न देवताओं पर विश्वास किया है तथा कुड़मियों ने प्रकृति पर विश्वास किया है। यहां यह भी कहा जा सकता है कि कुड़मियों के विश्वास में एक सर्वशक्तिमान विद्यमान है। उनको कभी नहीं नकारा। इसलिए अपनी आंखों के सामने देखा जिसकी रोशनी से दुनिया को उजाला किया। उसी सूर्य को सबसे बड़ा देवता के रूप में माना, क्योंकि प्रकृति में सबसे बड़ा सूर्य को ही समझा। अतः इनमें सूर्य की ही पूजा-अर्चना पर विश्वास कुड़मी करता है।

धरती और सूर्य के समिश्रण से ही धरती में जीवन सम्भव होता है। इसलिए यह भी एक विश्वास जगा। आर्यों ने इसी सूर्य को वंश के रूप में अपनाया। अतः सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी आदि का नाम इतिहास के पत्रों पर झलकता है। आर्यों के साथ यदि कुड़मी की तुलना किया जाय तो थोड़ा भी उसके साथ शारीरिक-सांस्कृतिक अथवा खान-पान के साथ एक-सा नहीं है।

सर्वप्रथम आर्यों ने गेहूं का चास किया परन्तु कुड़मी ने धान की खेती शुरू की। कुड़मी ने पेड़ की पूजा की, परन्तु पीपल का नहीं।

कुड़मी ने प्रकृति को ही सर्वशक्तिमान माना तथा यह मान कर चला कि प्रकृति के नियमानुसार मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है। चाहे वह अकाल, प्रलय, सूखा, बाढ़, महामारी, जन्म लेना, मृत्यु होना सभी प्रकृति के नियम है। आर्यों ने इन्हीं शक्तियों को देवता का रूप दिया तथा पूजा-अर्चना की, चाहे वह अरुण देव हो, वरुण देव, इन्द्र देव, अग्नि देव, शीतला माता आदि।

— — — —

अध्याय –7

कुड़मियों पर ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म का प्रभाव

भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव— झारखण्ड के कुड़मियों में हिन्दू धर्म का प्रभाव एक बहुत बड़ी साजिश के तहत हुआ, जिसमें कुछ अपना दोष तथा बाहर के लोगों का दोष देखा जाता है। जिस तरह भारत में आर्यों के प्रवेश से ही भारतीय संस्कृति में बाहर की संस्कृति का समावेश हो गया था, परन्तु कुड़मी की संस्कृति पेड़ की जड़ की तरह इतनी गहराई तक प्रवेश कर गया है कि ऊपर की पत्तियों के झड़ने के बावजूद नूतन पुष्प तथा पत्तियां पुनः लग जाती हैं।

साधारणतया झारखण्ड के कुड़मी प्रकृति-पूजक हैं तथा आदिवासी गोष्ठी के लोग हैं। इनके खान-पान, रहन-सहन तथा भाषा-संस्कृति में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं पायी जाती है। इनके गोत्र-विभाजन भी प्रकृति पर निर्भर करते हैं, परन्तु इनको हिन्दू बनने के पीछे बहुत से कारण थे एवं इनके द्वारा भी हिन्दू परम्परा के अनुसार अपने को ढालने का प्रयास किया गया। ये वर्ण व्यवस्था से बाहर हैं।

कुड़मियों को हिन्दू बनाने तथा हिन्दुओं के सम्पर्क में आने का मुख्य कारण था कि प्राचीन काल में ब्राह्मण अपने स्कूल में किसी प्रकृति-पूजक को पढ़ने नहीं दिया जाता था। आदिवासी गोष्ठी के लोगों को पढ़ने का कोई हक नहीं था। सम्भवतः इसी कारण कुड़मियों ने अपना मन बदल दिया होगा। यह घटना उस समय घटी थी जब संस्कृत भाषा का भी अध्ययन करना नियम के विरुद्ध था। ऐसे कठोर नियम के साथ इस कुड़मी समाज को भी रहना था। परिणामस्वरूप उसने अपने धर्म को बदलने का प्रयास किया होगा, क्योंकि हर

व्यक्ति चाहे वह जिस किसी भी समाज का हो, अपने को शिक्षित तथा विकसित हुआ देखना चाहता है तथा आने वाली संतान के भविष्य के बारे में कल्पना करता है।

आज जो भी हादसा कुड़मी समाज के साथ हुआ है, यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है, क्योंकि कुड़मी का माने अथवा कुः का ही अर्थ कुड़मी कुबुद्धि साधारण तौर पर लिया जा सकता है और ऐसी कथा प्रचलित भी है। यों तो विद्वानों ने कु का अर्थ पृथ्वी से किया है और रमी का अर्थ रमण करने वाला अर्थात् हल चलाकर अनाज उपजाने वाला कहा है। जाहिर है कुड़मी खेतिहर हैं तथा अपना जीवन-यापन खेती के माध्यम से ही करते हैं। इससे साफ होने लगा है कि कुड़मी प्रकृति-पूजक हैं।

प्राचीन काल से ही दो वाद चले आ रहे हैं—एक प्रकृतिवाद और दूसरा देवतावाद। प्रकृतिवाद में वे लोग आते हैं जो प्रकृति की पूजा करते हैं। उदाहरण के लिए मुण्डा, उरांव, हो, संथाल, खड़िया, गौड़ और कुड़मी या अन्य जनजाति आदि तथा दूसरे शब्दों में सीधा आदिवासी कहा जा सकता है। सही रूप में कुड़मी का इतिहास देखा जाए तो पता चलता है कि इसे हिन्दू बनने का कोई शौक नहीं था, परन्तु इन्हें कई षड्यंत्रों के तहत बना दिया गया। इन्हें बनने के लिए मजबूर किया गया। ऐसे तो कुड़मी हिन्दू बने ही नहीं, बल्कि ये प्रभावित है। कहीं भी कुड़मी ने अपनी संस्कृति नहीं छोड़ी है।

साधारणतः झारखण्ड के कुड़मी प्रकृति-पूजक हैं। इनकी अपनी भाषा एवं संस्कृति है जो बहुत ही सम्पन्न है। सर्वप्रथम इनके नामों को बदला गया और ये कुड़मी न होकर कुर्मी हो गये, जबकि झारखण्ड के कुड़मी का गोत्र विभाजन प्रकृति पर आधारित है, फिर भी हिन्दुस्तान के बाकी कुर्मी के साथ इसको गिना जाने लगा और तब से ये हिन्दू के प्रभाव में आ गए।

यों तो भक्ति-आन्दोलन के समय से कुछ-कुछ प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था तथा मनुष्य अपने को एक-दूसरे से सभ्य होने के ख्याल से कभी-कभी अपनी पहचान को भुला देता है और दूसरे की पहचान अपनाना चाहता है। यही घटना कुड़मी समाज के साथ भी हुई और मौका पाते ही इन्हें विचलित किया गया।

कुड़मी जाति के लोग साधारणतः कृषक माने जाने वाले लोग हैं। इनका पेशा मवेशी पालना तथा खेती करना है एवं यह परम्परा से चला आ रहा है। इसका प्रमाण सिन्धु घाटी सभ्यता, हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से मिलता है। कुड़मियों की संस्कृति एवं हड़प्पा की संस्कृति में कोई भिन्नता नहीं दिखाई देती है, परन्तु दुर्भाग्य से उस संस्कृति को आर्यों ने ध्वस्त किया, फिर भी

मूल रूप में इसका विनाश नहीं कर सके। झारखण्ड की भी एक सभ्यता थी जो सिन्धु सभ्यता से प्राचीन थी परन्तु इस ओर लोगों का ध्यान नहीं गया।

देवतावाद के अनुयायियों में वे लोग थे जो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र) में विभाजित थे।

भारतवर्ष में आर्यों के आने के बाद यहां रह रहे द्रविड़ों में भी भिन्नता दिखाई देने लगी। खून में मिलावट आयी। आर्य और द्रविड़ों में मिश्रित खून हो गया। उदाहरण के लिए भीम द्वारा हिडिम्बा का विवाह तथा कंस की बहन की शादी वासुदेव द्वारा होना। यह घटना महाभारत-काल में घटी। तत्पश्चात् इस देश का एक दुर्भाग्य रहा कि कई एक बार विदेशों से आकर मुसलमानों ने आक्रमण किया तथा यहां सुविधानुसार बस गये। अपना आधिपत्य बनाया तथा इस देश के राजा बने और अपनी इच्छानुसार शासन प्रारम्भ किया। धर्म के अनुसार मुसलमानों को एक से अधिक पत्नी रखने का चलन था और हरम-पद्धति भी प्रचलित था। जिस लड़की अथवा औरत को अच्छा देखते उसी को अपनी पत्नी अथवा हरम के रूप में रख लेते।

हिन्दू धर्मों के साथ घोर अन्याय और अत्याचार किया जाता और अपना धर्म मनवाने के लिए विवश करता। यहीं से झारखण्ड में विभिन्न जातियों ने इस्लाम धर्म अपनाया था। मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दू धर्म के लोग एकत्रित नहीं हो पा रहे थे। इनकी संख्या भी घटती जा रही थी। फलस्वरूप हिन्दुओं का झुकाव भक्ति की ओर हुआ और भक्ति-आन्दोलन की शुरुआत भारतवर्ष में हुई, जिससे मूर्ति-पूजा, देवी-देवताओं की पूजा में अटूट विश्वास दिलाने के लिए नाना प्रकार के तौर-तरीके को अपनाया गया साथ ही अद्वैतवाद, जो प्रकृति की पूजा करते थे अथवा आदिवासी कहे जाने वाले या जो जंगल में रहते थे, उनको भी हिन्दू बनाने की कोशिश की गयी, जिसमें बहुत हद तक सफलता भी मिली और भारत में मुसलमानों की संख्या से हिन्दुओं की संख्या बढ़ती गयी। रामायण-काल में राम आर्य थे और रावण अनार्य। यानि द्रविड़। आर्य और अनार्य की जब-जब लड़ाई हुई है तब-तब आर्यों को विजयी होते दिखाया गया है और अनार्यों को पराजित होते। परन्तु वास्तविकता यह नहीं थी। यह कि विशेष जाति अथवा आर्यों की ही एक चाल थी, जो अपनी चालाकी के साथ इस जाति अथवा द्रविड़ जाति जिसे हम आदिवासी कह सकते हैं, उनको विलुप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया गया, जो आदिवासी आर्यों के चंगुल में आये, उन्हें शुद्र के नाम से जाना जाने लगा और जो जंगलों में भाग गये, वे आदिवासी जंगली कहे जाने लगे।

रामायण-काल में ही जब रामचन्द्र की ओर से बहुत आदिवासी युद्ध में सम्मिलित हुए एवं साथ दिये, क्यों न उस समय रामचन्द्र जी जंगल में भटक रहे हों या पंचवटी की कुटिया में दिन काट रहे हों। जब राम-रावण में युद्ध हुआ और आदिवासियों की मदद से उन्होंने युद्ध जीते और इतिहास की रचना हुई। इन आदिवासियों को बन्दर-भालू की संज्ञा दी गयी। कहा गया कि रामचन्द्र के दल से भालू और बन्दर लड़े। यह तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि क्या बन्दर भालू के बल से रामचन्द्र जी की विजय हुई? सम्भवत: यहां भी लेखनी की चालाकी के साथ इन आदिवासियों का नामोनिशान मिटाने का प्रयास आर्यों के माध्यम से किया गया है।

यहां के कुड़मी को शुद्र बना दिया गया और हिन्दुओं के वर्णों में लाया गया, परन्तु अभी भी जीता-जागता कुड़मी मौजूद हैं, कभी शुद्र बने नहीं। यहां तक कि इनकी औरतें ब्राह्मण का छुआ हुआ कोई अन्न-जल को ग्रहण नहीं करती। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण समाज से कुड़मी समाज के लोग शुद्ध हैं और उच्च प्रतीत होते हैं।

इसी काल में आदिवासी गोष्ठी के लोगों को जो प्रकृति-पूजक थे, उनको हिन्दू धर्म की ओर प्रभावित किया गया। सम्भवत: यहीं से कुड़मी भी अपना जो सरना (जाहिरा) धर्म था, भूलने का प्रयास किया होगा और हिन्दू धर्म अपनाने का असफल प्रयास किया होगा। यह एक इत्तेफाक था। जाहिर है कुड़मी भी मुसलमानों से तंग आ चुके थे, परन्तु विवश थे। कुड़मी अपनी जान दे सकते हैं, परन्तु अपनी इज्जत को नीलाम होते नहीं देख सकते। तब है क्या, कि उस समय मुसलमान राजा था, चारों ओर उनका दबदबा था। इसलिए अपनी इज्जत तथा दामन पर आंच न आने देने के लिए अपने शरीर का सौन्दर्य समाप्त करने हेतु गोदना का प्रचलन शुरू किया और औरतों और लड़कियों ने विभिन्न रंग-बिरंगे ब्लाउज पहनना शुरू किए जिससे लड़की कुरूप दिखाई पड़े और किसी मुसलमान की नजर पड़ने पर भी आकर्षित न हो।

कुड़मी समाज के लोग इज्जत बचाने के ख्याल से उनके धर्म को किसी-न-किसी रूप में मानने लगा। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि उस समाज की औरतें गहना (सोने की मोहरें आदि) पहनती उसमें फारसी में लिखा हुआ पाया जाता है, अभी भी गांव में प्रचलित है अथवा गांव की औरतें जो सोने का सिक्का पहनती हैं, उसमें छाप अभी भी मुसलमानों का है। यह समय उनकी विवशता का था। मनुष्य मजबूर थे और जन-समूह को खोजते थे। सौभाग्य से वैष्णव धर्म उभर कर सामने आया और इस धर्म को मानने के लिए सभी आदिवासी अथवा प्रकृति-पूजक भी अपना धर्म छोड़कर हिन्दू धर्म से प्रभावित

होने लगे, क्योंकि इनका उस समय कोई विकल्प नहीं था। विवशता का क्षण था, परन्तु डा० अम्बेदकर ने अपनी 'सामाजिक दर्शन' में खुलकर हिन्दू धर्म की निन्दा की है। यहां तक कि धर्म परिवर्तन की भी बात कही है, क्योंकि अछूतों की जो दुर्दशा हिन्दू धर्म में की जाती है, शायद ही कहीं इस तरह किसी इन्सान को की जाती है। (सामाजिक-दर्शन : डा० अम्बेदकर)

हिन्दू धर्म में प्रभावित करने के लिए सबसे अच्छा रास्ता भक्ति का था। तभी व्यक्तियों को भक्ति का मार्ग दिखाया जाता था। यों तो सल्तनत-काल में अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों के समर्थक थे। विशेष रूप से हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा मुसलमान हिन्दू धर्म में शिव और वैष्णव की प्रधानता थी तथा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बनी हुई थी, परन्तु हिन्दू धर्म बाह्य आडम्बरों तथा जटिलता के कारण विकृत भी हो गया था, लोग उस समय अपने धर्मों से असंतुष्ट थे। निम्न वर्गों के लोगों का हिन्दू धर्म में कोई अस्तित्व नहीं था, फलस्वरूप अपना धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म अपनाने लगे। मौका पाते ही मुसलमानों ने हिन्दुओं के मन्दिरों तथा मूर्तियों को नष्ट कर डाला, फिर भी हिन्दू धर्म बरकरार रहा।

— — — —

अध्याय -8

भक्ति-आन्दोलन

हिन्दू धर्म से प्रभावित करने के लिए सबसे अच्छा रास्ता भक्ति का था। सभी व्यक्तियों को भक्ति का मार्ग दिखाया जाता था। यों तो सल्तनत काल में भारत में अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों के समर्थक थे। विशेष रूप से हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा मुसलमान हिन्दू धर्म में शिव और वैष्णव की प्रधानता थी तथा ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बनी हुई थी, परन्तु हिन्दू धर्म बाह्य आडम्बरों तथा जटिलता के कारण विकृत भी हो गया था, लोग उस समय अपने धर्मों से असंतुष्ट थे। निम्न वर्गों के लोगों का हिन्दू धर्म में कोई अस्तित्व नहीं था, फलस्वरूप अपना धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म अपनाने लगे। मौका पाते ही मुसलमानों ने हिन्दुओं के मन्दिरों तथा मूर्तियों को नष्ट कर डाला, फिर भी हिन्दू धर्म बरकरार रहा।

धार्मिक नेताओं ने एकेश्वरवाद का प्रचलन करते हुए आखेट युग में जी रहे सभी आदिवासियों को भक्ति का मार्ग दिखाने का प्रयास किया। उत्तर वैदिक काल में बलि-प्रथा, यज्ञ आदि से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा इस तरह से प्रकृतिवादी लोग भी धीरे-धीरे हिन्दू धर्म की ओर आकर्षित होने लगे।

राम, कृष्ण आदि अवतारों को सामने लाया जाने लगा। इन्हीं के नाम से कवि कविता लिखने लगे एवं भगवान के रूप में इनका वर्णन होने लगा। राम भक्तों में तुलसी आदि का नाम तथा कृष्ण भक्तों में सूर, मीरा, चैतन्य आदि का नाम गिना जाने लगा। यह द्रष्टव्य है कि भक्ति-आन्दोलन के समय जितना कृष्ण का गुणगान किया जाने लगा, इसकी तुलना में राम का कम था।

लोगों को प्रभावित करने का काम भक्ति कविता आदि के माध्यमों से किया जाने लगा, जिसका प्रभाव समाज में बहुत गहरा पड़ा। यह भक्ति-आन्दोलन दक्षिण भारत में प्रारम्भ हुआ। उसके बाद फैलते-फैलते सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में फैल गया। कहा जाता है कि विष्णु स्वामी सर्वप्रथम भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तक थे। उसके बाद रामानुज, निम्बार्क, माध्वाचार्य, रामानन्द, बल्लभाचार्य, कबीर, चैतन्य, तुकाराम, रामदास, रैदास, ज्ञानेश्वर, दादू दयाल तथा गुरुनानक आदि प्रमुख थे। जिसमें 'सुगुण'-निर्गुण दो धाराएँ चल पड़ी।

कुड़मी समाज को प्रभावित करने में सबसे अधिक हाथ चैतन्य को है तथा यह भी कहा जा सकता है कि समस्त झारखण्ड क्षेत्र के आदिवासी को चैतन्य महाप्रभु ने प्रभावित किया। चैतन्य कृष्ण के परम भक्त थे। सारा जीवन कृष्ण का गुणगान करते हुए बिता दिया। बंगाल में भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तक चैतन्य ही थे। बचपन से ही उनमें उच्च कोटि की प्रतिभा थी और जल्द ही ज्ञान और दर्शन संबंधी विषयों में पारंगत हो गये। लगभग पच्चीस वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास ले लिया और सारा जीवन कृष्ण के प्रेम और भक्ति में बिताया तथा उनके बारे में लोगों को उपदेश दिया।

चैतन्य महाप्रभु बंगाल के नदिया क्षेत्र से उपदेश के क्रम में वृन्दावन जाने लगे तब नीलांचल से होते हुए उन्होंने झारखण्ड में प्रवेश किया। शरत्चन्द्र राय द्वारा लिखित पुस्तक दि मुण्डाज एण्ड देयर कन्ट्री में यह दर्शाया है कि चैतन्य महाप्रभु के इस क्षेत्र में आने से अनेक आदिवासी प्रभावित हुए हैं। चैतन्य चरितामृत में पूर्ण रूप से वर्णन चैतन्य महाप्रभु का मिलता है। इसका 17वां सर्ग में हम झारखण्ड और वहां के निवासियों का वर्णन पाते हैं, जब यह महान् वैष्णव समाज सुधारक नीलांचल से मथुरा जाने के रास्ते में इस क्षेत्र से पार हो रहे थे। उसने अपने प्रेम-भक्ति से वे किस तरह से यहां के लोगों का मन जय किया वह इस प्रकार है—

मथुरा यावार छले आसि झारिखण्डे,
(भिल्ल प्राय लोक ताहे परम पाषण्ड)
नाम प्रेम दिया कैल सबार निस्तार;
चैतन्येर गुढलीला बुझे साध्य कार,
बन देखि भ्रम हय एइ वृन्दावन,
शैल देखि मने हय गिरि गोवर्धन,
झारिखण्डे स्थावर जहंगम आछे जत,
कृष्ण नाम दिया कैल प्रमेते उन्मत।

येइ ग्राम बिया यात्रं, यांहा करेन स्थिति,

से सब ग्रामेर लोकिर हय प्रेम भक्ति।

इस अनुभूति और विश्वास के साथ चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते हुए चले जा रहे थे और जहां गये वहीं कृष्ण-भक्त के बारे में अपना छाप छोड़ते गये तथा कृष्ण का गुण-गान करना एवं भक्ति में लीन रहकर मोक्ष की प्राप्ति करने का रास्ता दिखाया। यहीं से झारखण्ड के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ा और यहीं से झारखण्ड के कुड़मी वैष्णव धर्म से प्रभावित होने लगे तथा कीर्तन की परम्परा यहीं से प्रारम्भ होती है और नवरात्रि अनुष्ठान किया जाता रहा है। झारखण्ड के लोग कृष्ण और राधा की तस्वीर अपने घरों में लगाने लगे एवं कविता, गीत वगैरह की रचना राधा-कृष्ण को केन्द्र बिन्दु बनाकर किया जाने लगा और लोकगीत जो परम्परा से चले आ रहे थे, उसमें भी राधा-कृष्ण का छाप दिखाई देने लगा और सम्भवतः यहीं से झुमर संगीत का प्रादुर्भाव हुआ और रास-लीला (नचनी-नाच) का प्रचलन शुरू हुआ तथा किसी के मरने पर मंगल रात बस्टम आदि द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा।

चैतन्य महाप्रभु के झारखण्ड में प्रवेश होने के समय इत्तेफाक से करम का उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय चैतन्य ने देखा कि यहां करम पेड़ की डाली को काट कर नाच-गान किया जा रहा है, तब उनहोंने बताया कि यह करम नहीं कदम्ब पेड़ है और कृष्ण जी ने सर्वप्रथम ब्रज में लीला की थी अर्थात् गोपियों के साथ नाच-गान किये थे। चैतन्य ने कहा कि जगह-जगह पर कदम्ब डाल नहीं मिलने के कारण करम डाल को गाड़ा जाने लगा। उनकी वाणी तेज थी, लोगो ने स्वीकार किया तब से करम उत्सव में जहां भाई-बहन मिलकर नाच-गान होता था, वहीं नचनी नाच के माध्यम से सम्पन्न किया जाने लगा तथा दूसरे नजर से देखा जाने लगा। इसके काल में सांस्कृतिक बदलाव आया और जहां प्रकृति चित्रित नाम या सामाजिक चित्रित गान होता था, वहीं राधा-कृष्ण चित्रित होने लगा। तथा अपनी-अपनी मातृभाषा में रचना करने लगे। ज्वलन्त उदाहरण के लिए बुदु बाबू एवं कुड़माली कवि विनन्द सिंह आदि का नाम गिना जा सकता है। इन लोगों ने अपनी कविता के माध्यम से बहुत से लोगों को प्रभावित किया तथा उसके बाद जो भी कवि अपनी कविता, गीत लिखने लगे, राढ़ी बंगला (कुड़माली) भाषा में परिलक्षित हुआ, क्योंकि इस भाषा में लय, मात्रा बहुत आसानी से मिल जाता है। आज भी यह प्रचलन चल रहा है।

इसी समकालीन कुड़मी समाज में ब्राह्मण का प्रचलन शुरू होता है। झारखण्ड के अधिकांश कुड़मी को हिन्दू बनाने का प्रयास किया गया था और

ब्राह्मणों का वर्चस्व बढ़ गया। प्रत्येक गांव के बीच एक ब्राह्मण को पूजा सम्पन्न करने के लिए लाया गया और उन्हें बसाया गया। साथ ही साथ उनके भरण-पोषण के लिए जो गांव का महतो या सम्पन्न व्यक्ति होता था, उनके जिम्मे रहता था। यहीं से कुड़मी समाज में शादी-विवाह सम्पन्न कराने का भार ब्राह्मणों ने लिया और कुड़मी समाज का हांडी-विवाह, जो कुटुम्बों के माध्यम से सम्पन्न होता था, वह धीरे-धीरे लुप्त होता गया और ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न हुआ विवाह शुद्ध समझा जाने लगा। परन्तु यह आधुनिक है। यह प्रचलन 1930 के बाद से ही शुरू हुआ। उससे पहले हांडी-विवाह ही था। आज भी बहुत जगहों पर इसका प्रमाण देखने को मिलता है।

इसी काल में यानि 1800-1900 ई० के आस-पास झारखण्ड के कुड़मी को हिन्दू धर्म से प्रभावित करने का प्रयास जो किया गया था और बाह्य आडम्बरों की सीमा आसमान छूने लगी थी। कुड़मी समाज के लोगों द्वारा ब्राह्मणों की इज्जत करना, उच्च आसन देना, चरम सीमा पार कर रहा था। ब्राह्मण चालाक तो थे ही साथ ही साथ बुद्धिमान और शिक्षित भी थे, इसलिए रामायण-काल में भी अनार्यों को हारते हुए दर्शाया गया है तथा आर्यों को जीतते हुए। दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध होना, राम द्वारा रावण, बालि तथा कृष्ण द्वारा कंस का जबकि कई एक बार अनार्यों की जय हुई है। परन्तु इतिहासकार इन्हें जीतते हुए नहीं दिखा सकता, क्योंकि उस समय ब्राह्मणों का वर्चस्व बरकरार था और समाज में उनकी प्रतिष्ठा बनी हुई थी। जब समुद्र मंथन हुआ, तब सुर-असुर ने मिलकर मंथन किया। जब अमृत का घड़ा मिला तब 'देवताओं' ने ले लिया और जब 'विष' का घड़ा मिला तब 'असुरों' को दिया गया। समाज उसको प्रतिष्ठित नहीं मानता जो अनार्य थे तथा पुनर्जन्म में उसको ब्राह्मण का रूप दे दिया जाता था या दूसरे धर्म का कोई व्यक्ति नेक काम करता तो उसको अपने में शामिल करने की कोशिश करता। उदाहरण के लिए शिव, जो अनार्यों के देवता थे, उनको हिन्दू ने अपना देवता बना लिया और विष्णु का परिपूरक बना दिया। यानि ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शिव विनाशकर्ता। ऐसे ही रत्नाकर को डाकू साबित किया और जब उन्होंने रामायण की रचना की तो वही बाल्मीकि हो गये।

इस तरह से आर्यों ने अपनी चतुराई से तथा कला चातुर्य से अनार्यों का नाम मिटा देना चाहा, परन्तु मिटा नहीं सके। यों तो पूर्व वैदिक (ऋग्वेद) काल में मात्र दो ही वर्ण थे, एक ब्राह्मण दूसरा क्षत्रिय तथा कर्म पर आधारित था। जब वही उत्तर वैदिक काल (ययुर, साम तथा अथर्व) आया तो वही व्यवस्था पारम्परिक हो गई और वैश्य तथा शुद्र का जनम हुआ जो अनार्य थे। परन्तु

इतिहासकार इन्हें अनार्य अथवा यहां के आदिवासी थे, कहने में डरने लगे थे। इसीलिए एकलव्य को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या नहीं सिखायी। एकलव्य जब किसी प्रकार से सीख भी लेता है तो उसका अंगूठा काट लिया जाता है, जिससे वह नाकाम हो सके। इस तरह उस समय जो मूल निवासी थे, उनके प्रति घोर अन्याय किया गया।

यदि हम यह मानकर चलें कि यह भी एक मनगढंत बात है तो शायद यह सोच या खोज अधूरा रहेगा कि अनार्यों के साथ आर्यों की लड़ाई नहीं हुई थी। विभिन्न लेखकों ने यह जोर देकर यह स्वीकार किया है कि यहां के अनार्यों से आर्यों की भिड़न्त नहीं हुई है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। कई बार आर्यों और अनार्यों में लड़ाई हुई। यथा—यह मान लिया जाता है कि द्रविड़ भारत के क्षेत्रज निवासी थे जिनके साथ आर्य आक्रमणकारियों की भिड़न्त हुई एवं यद्यपि इस बात को जोर देकर प्रमाणित नहीं किया जा सकता है, फिर भी यह बलुचिस्तान के ब्राहुई कबिला, जो द्रविड़ भाषा-भाषी हैं, के अस्तित्व से काफी हद तक समानता है। क्या हम इनको, जो आज काफी हद तक मिश्रित हो गये हैं और अद्राविड़ प्रकार के हो गये, मूल द्राविड़ जाति समझें, जो भारत से द्राविड़ संचलन के पुरोधा ही होंगे अथवा पश्चिम अथवा मध्य एशिया से भारत की ओर आते समय द्राविड़ों का एक छूटा हुआ हिस्सा समझें। किन्तु यह सम्भव है कि आर्य जिन मूल वासियों से मिला उसमें प्राक् द्राविड़ समुदाय भी थे, जो आज भी जंगली आदिवासी के रूप में वर्तमान हैं, जिनको कुछ विद्वानों ने श्रीलंका के 'वेद्दाहे' और मलय के साकई एवं सेमंग लोगों के साथ संबंधित करते हैं। (दी रिलिजन एण्ड फिलासफी आफ दी वेदी एण्ड उपनिषद् : वैडेल कीथ, पृ० 11, अध्याय 1)

यह तर्क कोई निर्णायक नहीं है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्य के साथ प्राक् द्राविड़ एवं द्राविड़ लोगों की भिड़न्त नहीं हुई थी।

यह युद्ध अनार्यो को आर्य बनने का एक सुनियोजित षड्यंत्र था जो अनार्य पकड़ में आया उसे दास बनाने को स्वीकार करना पड़ा था, उन्हें दास बनाकर शूद्र का दर्जा दिया गया। साम वेद और यजुर्वेद का निर्माण किया गया, क्योंकि साम वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में ही वैश्य और शुद्र की अधिक चर्चा है। ऋग्वेद के समय वर्ण-व्यवस्था में मात्र दो ही जाति के लोग थे। एक ब्राह्मण तथा दूसरा क्षत्रि, परन्तु कार्यकुशलता के आधार पर ब्राह्मण क्षत्रिय हो सकता था तथा क्षत्रिय ब्राह्मण। परन्तु जैसे-जैसे युग बदलता गया, आदि निवासियों को पकड़ा जाने लगा, जो पकड़ में आया वह वर्ण व्यवस्था के 'शुद्र' में गिना जाने लगा तथा जो भाग गया, वही आदिवासी यानि असभ्य हुए मूलतः ये अनार्य थे।

इस देश में आर्यों की सबसे अधिक लड़ाई आदिवासियों से लड़नी पड़ी है। वर्षों तक आदिवासी लड़ते गये, परन्तु हारते हुए ही उन्हें दिखाया गया। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि इस देश में जिस तरह से आर्यों और अनार्यों की लड़ाई हुई है आर्यों को यहां शासन करना था। विभिन्न प्रकार के छल-प्रपंच से इनको हराया गया। यदि इन अनार्यों को आदिवासी सीधे रूप में कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन्हीं आदिवासी में से एक कुड़मी आदिवासी भी था, जो सदियों से रह रहे है इनको संस्कृति में सम्मिलित करने का असफल प्रयास किया गया है, परन्तु काफी हद तक प्रभावित भी हुए हैं। परन्तु आज चेतन शील हो गये है तथा अपना संस्कार-संस्कृति जो पूर्वजों से प्राप्त है उसको समझ रहे हैं।

— — — —

अध्याय -9

कुड़मियों की सामाजिक अवस्था के साथ आस्ट्रिक जन-समुदायों का तुलनात्मक अध्ययन

सरना और कुड़मी में तुलना—सरना शब्द की व्युत्पत्ति तथा सरना का शाब्दिक अर्थ जानने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि 'सरना' क्या है तथा 'सरना' शब्द का उद्भव कहां से हुआ साथ ही साथ यह भी जानना आवश्यक है कि 'सरना' का क्या महत्व है।

सरना शब्द की उत्पत्ति ऐसे तो शरणं से हुआ लगता है। ऐसा विद्वानों का आम मत है तथा सरणं सरना का एक अन्य रूप माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सरना धर्म है उसका सरन करना ही सरना धर्म है अथवा उस धर्म के प्रति शरणं में आना ही सरना कहा जा सकता है। सुखदेव उरांव लिखित सरना-दर्शन में कहा गया है कि सरना शरणं शब्द का अपभ्रंश है। बुद्धं शरणं, धर्मम शरणं, संघं शरणं इनमें मुख्य रचना शरणं की है। शरणं जाने पर ही अहं का लोप होता है, इसलिए बुद्ध धर्म को सरना धर्म जानकर सरना शब्द को अपनाया गया है। (सरना-दर्शन-पृ० 14-15)

सरना साधारण अर्थ में जंगल का वह अंश है जो अर्द्ध देशज में खेती योग्य जमीन बनाने के बाद छोड़ दिया गया है। वहाँ धर्म के नाम से सामूहिक रूप में पूजा की जाती है। दूसरे शब्द में यह भी कहा जा सकता है कि जब ग्राम बसने के पूर्व किसी शाल के वृक्ष या प्रकृति देव से अनुमति मांगी जाती है, जहां पर लोग गांव बसाना चाहते हैं। उसकी भी सरना नाम से सामूहिक रूप से पूजा की जाती है। इसलिए सरना धर्म पूरी तरह से प्रकृति पर आधारित है। यह सामाजिक पूजा स्थल है।

संसार में प्राकृतिक नियम है तथा प्राकृतिक आस्थाओं का परिवर्तन निश्चित है और मानव जीवन भी इसी प्राकृतिक अवस्थाओं से प्रभावित होते हैं। जन्म और मृत्यु भी सत्य है, क्योंकि जिसका जनम होता या जो जन्म लेता है, उसका अन्त होना या मृत्यु को प्राप्त करना निश्चित है। यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। जो परम सत्य है।

सरना का दूसरा अर्थ भी लगाया जाता है। सर का अर्थ सर्वश्रेष्ठ और ना का अर्थ नाथ अर्थात् सर्वश्रेष्ठ मार्गदाता को ही सरना कहा जा सकता है। 'कोल' जिसका उच्च जाति के लोगों ने नामकरण कभी किया था या 'किरात', राक्षस, निशाचर आदि सब सरना धर्म के अनुयायी हैं। सरना धर्म में जिन जनजातियों का समावेश है—वे हैं—मुण्डा, उरावं, हो, खड़िया, गोंड, कुड़मी आदि। (झारखण्ड में)

कुड़मी आदि निवासी इस भू-भाग में रहने वाले सभी प्रकृति अनुगामी कहे जाते हैं। किसी भी सवर्ण हिन्दू देवी-देवताओं के उपासक नहीं हैं। शाल वृक्ष को पवित्र माना जाता है। 'सर मोनियर विलियन्स', ने शाल वृक्ष को बहुत महत्वपूर्ण वृक्ष के रूप में कल्पना की है।

बौद्ध धर्म का भी उद्गम सरना वृक्ष से माना जाता है। बुद्ध का जन्म और मृत्यु भी साल वृक्ष के नीचे हुई है। इसलिए बुद्ध को आदिवासी धर्मेश के नाम से जानते हैं।

शाल वृक्षों का उत्सव कुड़मियों का पवित्र त्योहार माना जाता है, भले ही आज उसका प्रचलन कुड़मी समाज में कम है, फिर भी हर वर्ष मनाने की प्रथा है।

सरना की वंदना या पूजा जिस स्थान पर की जाती है, उस स्थान को आदि माता, देवी माता, भुई माता से जाना जाता है और उस स्थान में जो शाल अथवा अन्य वृक्ष होता है, उससे देवता का प्रतीक माना जाता है।

कोल धर्म में साल वृक्ष को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसी तरह कुड़मी भी शाल वृक्ष को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। यह सत्य है कि आदिवासियों के समाज को विभिन्न धार्मिक दमनों द्वारा विलुप्त एवं गुमराह किया गया, फिर भी उन्होंने सरना दिशावली, जाहेर थान, जाहिरा शब्द को हृदयंगम किया एवं अभी भी उसी के अस्तित्व को और उसके पथ को मानते हैं।

कोल अथवा कोलारियन धर्म जो संस्कृति आदि से लेकर अब तक चली आ रही है, उसे कुड़मी धर्म संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यही कुड़मी आदि काल में कोल समरूप विहित किये जाते थे तथा सदियों से

इनका उद्‌गम कुड़मी कोल निवास स्थान के साथ रहने के कारण पार्थक्य नहीं है। इसलिए जो कोल धर्म है, वही कुड़मी धर्म है, वही प्रकृति पूजा है, इसलिए यह कथन प्रचलित हैं—

कोल, कुड़मी कोड़ा।

वेद शास्त्र छाड़ा

इन्होंने एवं अन्य आदिवासियों ने हिन्दू धर्मशास्त्रों का अनुकरण कभी नहीं किया है तथा वेद में इनका वर्णन कहीं नहीं मिलता वरन् इतिहासकारों ने इनका नाम बदल कर राक्षस, बन्दर, भालू जरूर कहा है, परन्तु सीधे ये आदिवासी थे। यह कहने में डरते थे, इसलिए जहां कोल शब्द का वर्णन मिलता है। वहीं कुड़मी भी शामिल होते हैं। कोल और कुड़मी सिर्फ नाम का पार्थक्य है। रहन-सहन, खान-पान, विवाह, मरण आदि संस्कार एक जैसा है।

आस्ट्रिक और कोल धर्म भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसको भी संस्कृति के दृष्टिकोण से पार्थक्य और अन्तर नहीं किया जा सकता है, जो भी कोल धर्म-संस्कृति है, वही आस्ट्रिक का भी है। इस आस्ट्रिक अथवा कोल धर्म कुड़मी धर्म ही कहा जा सकता है। कुड़मी तब से लेकर आज तक अन्य जनजातियों के साथ रह रहे हैं तब से उनका नाम बदला नहीं, परन्तु अपने-अपने गोत्र के अनुसार पूजा-अर्चना होने लगी। सभी जनजातियों की जिस तरह भाषाएं अलग हुई हैं, उसी तरह नामकरण में भी अंतर हुआ है। किसी ने सरहुल कहा तो किसी का वाहा हुआ तो किसी को सारजोम। इसी तरह शब्द-भेद हुआ।

कुड़मियों का आस्ट्रीक जन समुदायों का तुलनात्मक अध्ययन— विद्वानों का मत है कि भारत में जितने भी लोग हैं सभी बाहर से आये हैं। सर्वप्रथम इस देश में निग्रीटों आये उसके बाद आस्ट्रिक, द्रविड़, किरात और आर्य आयें। साथ ही यह भी अनुमान लगाते हैं कि ये सब अफ्रीका के आस-पास से आये हैं। साथ ही यह भी अनुमान लगाने का कयास करते हैं कि सर्वप्रथम मानव जीवन का इस धरती पर सृष्टि अफ्रीका को ही जाता है इस तरह विद्वान अपना मत देते हैं तथा वहीं से इधर-उधर भ्रमण के क्रम में फैल गये।

आस्ट्रिक जन समुदायों में मुण्डा, हो, संथाल, खड़िया आदि अभी भी जीता-जागता उदाहरण हैं तथा कुड़मियों से इनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इनके संस्कृति आचार-विचार में इतना मिश्रण हो गया है कि इनको एक दूसरे से अलग करना सम्भव ही नहीं है। साथ ही शब्दों का आदान-प्रदान इतना ज्यादा है कि एक दूसरें के साथ अलग कर कल्पना ही नहीं किया जा सकता।

आस्ट्रिकों के साथ कुड़मियों का सम्बन्ध उस कबिलाई समय से है जब ये जंगल महल में रह रहे थे झारखण्ड मुख्यतः चार जंगलों से घनिभूत था। (यथा—रन वन, बीजू वन, वाधा वन तथा अरुन वन) उस समय ये अपने कबिला में रहते थे तथा अपनी-अपनी भाषा से वार्तालाप करते थे। जो कबिला जिस भाषा से बातें करते थे वह भाषा उनके कबिला के नाम से बाद में प्रचलित हुआ। मुण्डा कबिला जिस भाषा का प्रयोग किया वह मुण्डारी हुआ तथा संथाल का संथाली हुआ, हो का हो तथा खड़िया का खड़िया भाषा नाम हुआ उसी तरह कुड़मी कबिला जिस भाषा से बात किया वह कुड़माली भाषा हुआ।

परन्तु ये कबिला बहुत दिनों से एक दूसरे के सम्पर्क में रहे। फलतः इनके भाषाओं में मिश्रण हो गया। और सभी ये खेरवार गोष्ठी के कहे जाने लगे। साथ ही इनकी भाषाओं का सर्वेक्षण किया गया और इसे आस्ट्रिक (आग्नेय) भाषा परिवार में रखा गया। ये सभी जातियों को कुड़मी समेत एवोरजिनल, ट्राइब्स प्रिभिटिब ट्राइब्स में रखा गया। ये सभी आदिवासी थे और हैं। परन्तु दुर्भाग्य कुड़मी के साथ यह रहा कि 1956 में जब अनुसूचित जाति और जनजाति का सूचिकरण हुआ उस समय झारखण्ड के कुड़मी के साथ-साथ चिक बड़ाइक, महली, पातर, कोल, ढांगर, कोल्हू, ढेकानाल, भोक्ता आदि आदिवासी सूची से छुट गये। फलस्वरूप जो आज अनुसूचित का लाभ मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पा रहा है। अभी हाल में महली, पातर को अनुसूचित किया गया। और असल आदिवासी जो सूचिबद्ध हुआ उन्हीं को कहा जाने लगा।

जाति को अनुसूचित नहीं कर पाने के कारण इनकी भाषा भी जिस परिवार में होना चाहिए था वह नहीं रह पायी। जबकि भाषा सर्वेक्षण के विद्वानों ने इसे साफ किया है कि द्रविड़ गोष्ठी के लोग हैं तथा (सुनीति कुमार और भारत के भाषा सर्वेक्षण) इनकी भाषा द्रविड़ परिवार की भाषा है परनतु द्रविड़ और आग्नेय परिवार में आदिवासी गोष्ठी की भाषा है जो अभी अनुसूचित है और कुड़मी चूंकि छुट गये इसलिए इनकी भाषा भी आग्नेय और द्रविड़ में नहीं रखकर आर्य भाषा परिवार में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। जबकि भाषा परिवार के लिए जो नियम है उसे देखना चाहिए और उसे भी निर्धारित करना चाहिए कि यह किस भाषा परिवार का है।

आस्ट्रिक जन समुदायों के साथ कुड़मी को अलग करना सम्भव ही नहीं है, क्योंकि आस्ट्रिक समुदाय के लोग जन्म लेने से लेकर मृत्यु तक जो संस्कार समाज में स्थापित है वही संस्कार कुड़मियों में है। जन्म लेने के छह दिनों बाद "छठी" होता है तत्पश्चात् नारता होता है तावरा होता है। आस्ट्रिक मृत शरीर को

गाड़ते हैं उसी प्रकार कुड़मी भी मृत शरीर को गाड़ते हैं। विवाह भी एक गोत्र में नहीं करते हैं सभी अपने गोत्रों से अलग गोत्र में विवाह करते हैं चाहे वह आस्ट्रिक हो या कुड़मी। आस्ट्रिक तथा कुड़मियों का गोत्र भी सामान्य है। उनके गोत्र भी प्रकृति से संबंधित है तो कुड़मियों का गोत्र भी प्रकृति से संबंधित है। मुण्डा लोग गोत्र को ''किली'' कहते हैं कुड़मी ''गुसही'' तथा सभी का अपना-अपना विश्वास है और इसी विश्वास के साथ उस गोत्र चिन्ह को नुकसान नहीं पहुंचाते तथा मारते नहीं हैं।

यथा मुण्डारी का गोत्र—नाग, हँस, पुर्ती, कच्छप आदि।

कुड़मी का गोत्र—डुमरियार, बंसरियार, कोपो, मुतसआर, हिन्दोआर आदि।

कुड़मियों का तथा आस्ट्रिक का 81 गोत्र है इसलिए कथा प्रचलित है कि ''कोल कुड़मी एकासी। सनकापाटी, तिरासी॥''

इस तरह देखा जाए तो कुड़मियों का आस्ट्रिक के साथ घना सम्बन्ध है। या यों कहा जाए कुड़मी, आस्ट्रिक और द्रविड़ के बीच का हिस्सा है, क्योंकि इन दोनों से इनका इतना गहरा सम्बन्ध है कि दोनों में किसका निकटतम स्थान है यह कहना मुश्किल है। मेरा विचार है कि ये तीनों जातियां आस्ट्रिक कुड़मी और द्रविड़ एक दूसरे के सन्निकट सदियों से रहे हैं। फलतः इनको एक दूसरे के साथ अलग कर पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। या आस्ट्रिक और द्रविड़ के बीच का माना जाए तो कोई अतिरियोक्ति नहीं होगा।

— — — —

अध्याय –10

कुड़मी व्यवस्था में द्रविड़ धार्मिक दार्शनिक तत्व

द्रविडियन और कुर्मी— भारतवर्ष को यदि द्रविड़ों का देश कहा जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में जिन लोगों का आधिपत्य था, वह द्रविड़ था। मध्य एशिया से जब आर्य भारत में आये तो दविड़ का दूसरा नाम अनार्य हो गया। इतिहासकारों का मत है कि आर्यों ने जब भारत में प्रवेश किया तो द्रविड़ों से लोहा लेना पड़ा। द्रविड़ लोग कद में आर्यों से छोटे, सांवले, भूरे या काले थे। द्रविड़ों को अनार्य, दस्यु, असुर, राक्षस, कोल, किरात आदि नामों से चिन्हित किया गया।अन्ततोगत्वा इन्हें शुद्र, अति शुद्र से जाना जाने लगा। इतिहासकारों का भी कहना है कि प्राचीन वेदों में वर्ण-व्यवस्था की चर्चा थी ही नहीं। जो व्यक्ति जिस काम के लिए उपयुक्त होता था, उन्हें उसको उसका वर्ण दिया जाता था। ऋग्वेद में मात्र दो ही वर्ण थे। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय। यदि क्षत्रिय पूजा करे तो उन्हें ब्राह्मण कहा जाता था। यदि ब्राह्मण भी लड़ाई, राजनीतिक क्षेत्र में भाग ले तो वह क्षत्रिय कहा जाता था। लेकिन युग बदलने के साथ तमाम द्रविड़ अथवा आदिवासी जो डर से जंगल-कन्दराओं में छिपे थे, वे धीरे-धीरे दासत्व स्वीकार करने के लिए विवश होने लगे, फलतः अंतिम दो वेदों का निर्माण हुआ। वृक्ष, सांप, भूत, पिशाच आदि की पूजा द्रविड़ों के सम्पर्क से अथर्ववेद में घुली है। (भारतीय संस्कृति का विकास : डा० मथुरा लाल शर्मा, पृ० 169)

भारत में आर्यों ने द्रविड़ों पर इस कदर कहर ढाया कि वे अपने अस्तित्व को भूल गए और दासत्व स्वीकार कर लेना पड़ा। फलतः इन्हें अनार्य, शुद्र की

उपमा देकर उनको समाज और धर्म से विहीन कर दिया गया। आदिवासियों को वर्ण में कोल (कोलियां) कहा गया, जिसमें साधारणतः निम्न जनजातियों का समावेश है, जैसे—मुण्डा, उरांव, हो, संथाल, भील, गोड़, पणि और खड़िया आदि (सरना-दर्शन , पृ० 5) इसीलिए यह कहा जाना कि द्रविड़ यहां के मूल निवासी हैं जिसकी गाथा भारतीय इतिहास के पन्नों में झलकती है, परन्तु उनके नाम बदल दिये जाने पर अस्तित्व विहीन हो गये हैं।

रावण दक्षिणायन द्रविड़ों की उस गोष्ठी का मूल पुरुष था, जिसके परवर्ती प्रधान वादरायण व्यास हुए, जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों का संकलन किया और यह भी मालूम किया कि इसी द्रविड़ गोष्ठी ने सारे संस्कृत साहित्य को अनार्य आख्यानों, अनार्य दर्शनों, अनार्य देव-देवताओं की महिमाओं एवं अनार्य रस्मों को घुसेड़ कर गंदा कर दिया तथा इसी गोष्ठी के विद्वान सायण, उबट और महीवर ने आर्यों के पवित्र और अनन्त वेदों का भाष्य लिखकर उनकी इयत्ता कर दी। (रावण और उसकी लंका : चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, पृ० 21) इस प्रकार अनेक कथन आर्य पीड़ितों द्वारा ही प्रमाणित किये जाते रहे हैं।

कभी-कभी आर्य पंडितों ने यह भी प्रमाणित करने की कोशिश की है कि द्रविड़ लोग आस्ट्रेलिया, मिश्र व मेलास्टाइन से आये हुए विदेशी हैं। रावण आस्ट्रेलिया से लंका होकर भारत में आये थे। यह कथन आर्यों का है। श्री मेल्सडी वेंकट रत्नम द्वारा लिखित 'राम द ग्रेटेस्ट फ्राउ आफ इजिप्ट' जिसमें यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि राम और रावण ये मूलतः भारत के मानते हैं, परन्तु कथायें जो कहानी हैं, वह मिश्र के 'राम सेस द्वितीय' की कहानी है। दशरथ, कौशल्या, राम-लक्ष्मण, सीता, वशिष्ठ नाम के व्यक्ति शायद भारत में न हो। (रावण और उसकी लंका : चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, पृ० 21)। रामायण महाभारत की और गीता की जो प्रतियां उपलब्ध हुई हैं या इन ग्रंथों की जो कथायें वहां तक प्रचलित हैं, ये ज्यों की त्यों नहीं हैं। रामायण आदि की कथाओं में बहुत हेर-फेर हो गया है, जो प्रतियां संस्कृत भाषा में मिली है, उनमें यह हेर-फेर कम है, परन्तु चीनी या दूसरी भाषा में जो कथायें हैं, वे बहुत बदल गई हैं। यहां तक कि राम और सीता के नाम भी कुछ और ही हो गये हैं। (भारतीय संस्कृति का विकास : डा० मथुरा लाल शर्मा, पृ० 160-161)

रावण का द्रविड़ होना तो दक्षिणी द्रविड़ कजगम के निवासी भी स्वीकार करते हैं तथा राम-रावण युद्ध को आर्य और द्रविड़ का संघर्ष मानते हैं। अधिकांश इतिहासकारों का कहना है कि अनार्य जो द्रविड़ हैं, जो भारत के मूल निवासी हैं, आर्यों के आने के बाद द्रविड़ दक्षिण की ओर भाग गये, क्योंकि द्रविड़ों से कहीं अधिक शक्ति आर्यों की थी।

रामायण काल में तथा महाभारत काल में जिन योद्धाओं को असुर कहा गया है, मूलतः वे ही भारत के मूल निवासी थे तथा आदिवासी गोष्ठी (मूल) लोग थे। बालि, सुग्रीव, हनुमान, जामवन्त, कुम्भ-निकुम्भ, महिषासुर, हिरण्यकशिपु, कंस, रावण, कुम्भकरण, मेघनाद, अकासुर-बकासुर आदि सबके सब आदिवासी थे। इन लोगों ने आर्यों से घमासान लड़ाई की। द्रविड़ों का महान् योद्धा शिव था, इनकी पूजा देवता स्वरूप होती थी। उन्हें भी छल-बल लगाकर आर्यों ने अपने साथ कर लिया और आर्य पुत्री पार्वती से शिवजी का विवाह हुआ। तत्पश्चात् दुर्गा को सामने किया गया और द्रविड़ योद्धा महिषासुर को मार डाला। अंत में शिवजी जो द्रविड़ थे, आर्यों का देवता हो गये तथा ब्रह्मा, विष्णु की पंक्ति में बैठकर संहार करने का पद मिला।

द्रविड़ों को परास्त करने के लिए यथासंभव आर्यों ने प्रयास किया और अंत में सफल भी हो गये, परन्तु यह हकीकत नहीं है, कई बार द्रविड़ों ने आर्यों को परास्त किया है, परन्तु उसको इतिहासकारों ने छिपाया है। किरात अर्जुन की लड़ाई में अर्जुन का परास्त होना तथा व्याघ्र द्वारा कृष्ण को बाण मारना आदि छोटी घटनाओं को दर्शाया है, परन्तु बड़ी घटनाओं को उसने नहीं दिखाया है। यहां तक कि जिस द्रविड़ योद्धा को आर्यों ने मारा वह छल-कपट से मारा है। अन्यथा ये मार नहीं सकते थे।

भारत के द्रविड़ों में जिन मूल निवासियों का उल्लेख है, उसमें मूलतः द्रविड़, भील, संथाल, गोड़, उरांव, मुण्डा, हो, कुड़मी तथा खड़िया आदि को मूल निवासी माना जाता है, जो भारत के ही हैं, परन्तु जो बाहर से आये आर्य, मंगोल, ईरानी, यूनानी, शक, सीथियन, यूवी, कुशाण, हुण, मुसलमान तथा यूरोपीयन को विदेशी माना जाता है, जो भारत में आये थे। इसलिए यह मान कर चलना है कि झारखण्ड के कुड़मी द्रविड़ थे। यह शत-प्रतिशत प्रमाण मिलता है कि इनकी जो संस्कृति है और कुड़मी की संस्कृति है, उसमें कोई अन्तर परिलक्षित नहीं होता है। हालांकि इस क्षेत्र में जिस रफ्तार से आर्यों की संस्कृति द्रविड़ों की संस्कृति के साथ इस तरह मेल-जोल हुआ है कि फिलहाल पार्थक्य करना असम्भव होता है। इसलिए संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि आर्यों की संस्कृति ने कुड़मी की संस्कृति को प्रभावित नहीं किया है। आर्य संस्कृति की कुड़मी की संस्कृति में छाप दिखाई पड़ता है, परन्तु यह भी नाममात्र का ही।

द्रविड़ लोग काफी बलवान और योद्धा थे, परन्तु आर्य लोगों के पास अस्त्र-शस्त्र था और वे लड़ाकू थे। (रावण और उसकी लंका—पृ० 35) द्रविड़ लोग शिल्पकार एवं कला-प्रेमी थे। साथ ही साथ ये प्रकृति-पूजक थे

तथा सोने और चांदी निर्मित आभूषण पहनते थे। अति प्राचीन काल से ईंट और पत्थर का भवन-निर्माण में दक्ष थे तथा रहने के लिए घर पसंद करते थे। द्रविड़ नगरीय जीवन व्यतीत करते थे एवं खेती करने में निपुण थे। आज इसी उदाहरण को सामने रखा जाए तो जिस निपुणता के साथ कुड़मी खेती करता है उसी निपुणता का प्रमाण आदि काल का मिलता है। द्रविड़ों की जो मानसिक प्रवृत्ति थी तथा वह दूसरों की सेवा-भावना की है, परन्तु आर्य लोगों की भावना दूसरों से सेवा लेने की है।

सांस्कृतिक आधार पर यदि यह सोचा जाए तो कुड़मियों की संस्कृति और अनार्यों की संस्कृति में अन्तर नहीं। यदि रामायण काल को ही लिया जाए तो यह प्रमाण है कि राम ने बालि का वध छलपूर्वक किया और बालि के छोटे भाई सुग्रीव को उसका राज सौंपा। साथ ही सुग्रीव ने बालि की पत्नी को भी अपनी पत्नी स्वीकार किया। इसी तरह लंका के राजा रावण को भी श्री राम ने छल-प्रपंच से मारा और उसकी पत्नी, राजपाठ सब विभीषण को सौंप दिया।

ऐसे ही प्रमाण कुड़मी समाज में अति प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। यदि बड़ा भाई का असामयिक निधन के कारण स्वर्गवास होता है तो उसका छोटा भाई उसकी पत्नी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई उसकी पत्नी को अपनी पत्नी स्वीकार करता है। यह कुड़मी समाज की चली आ रही प्राचीन परम्परा और सामाजिक मान्यता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुड़मी संभवतः द्रविड़ है। रावण शिवभक्त थे। शिव के अलावे उन्होंने किसी और देवता का स्मरण नहीं किया है। शिव प्रकृति के देव हैं, अनार्यों का देवता हैं। उसी तरह कुड़मी भी शिवभक्त हैं। इन लोगों ने भी दूसरे देवताओं को प्राथमिकता नहीं दी है। चाहे करम ठाकुर के रूप में शिव की पूजा की गयी हो अथवा उसको पत्थर, पहाड़ के रूप में पूजा गया हो। सभी सांस्कृतिक अनुष्ठान और संस्कारों में शिव का छाप है।

इसलिए यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि शिव ही सर्वशक्तिमान देवता हैं, इनको हर-हर महादेव के नाम से भी जाना जाता है। इसलिए आर्य देवताओं से भी आगे इनका नाम आता है। जैसे हरे राम, हरे कृष्ण साथ ही साथ ब्रह्मा तथा विष्णु द्वारा शिव का पूजा-अर्चना का प्रमाण मिलता है, परन्तु शिव द्वारा किसी देवता की पूजा करने का प्रमाण नहीं मिलता। इसी देव को कुड़मी ने सर्वशक्तिमान मान कर पूजा-अर्चना की है।

— — — —

सहायक ग्रंथ-सूची

(1) इथिको—लिटररी वैल्यूज आफ द टू ग्रेट इमिक्स आफ इण्डिया : विनोद शर्मा, 1978

(2) द कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया, वोल्यूम 4 : हरिदास भट्टाचार्य बोम्बे, एच० ओ० डी० (फिल) ढ़ाका यूनिवर्सिटी, 1956।

(3) द रिलिजन एण्ड फिलासफी आफ द वेदा ऐन उपनिषद् : आर्थर—वैरिडले कीथ, 1925

(4) दर्शन कोश—प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1988।

(5) द संथाल—नावेन्दु दत्ता, मजूमदार, डिपार्टमेंट आफ एन्थ्रोपोलोजी गवर्नमेंट आफ इण्डिया, मेमोइर नं० 2, 1955।

(6) चार्वाक दर्शन—आचार्य आनन्द झा, 1969।

(7) भारत की संस्कृति का विकास—डा० मथुरालाल शर्मा, 1957

(8) प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता—दामोदर धर्मानन्द कौसंबी, तीसरा संशोधित संस्करण, 1990।

(9) प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन-सत्यकेतु विद्यालंकार, पांचवां संस्करण, 1991।

(10) हिन्दुइज्म—स्वामी निखिलानन्द, 1968।

(12) फिलोसफी ऑफ रिलिजन—के० एम० पी० वर्मा, 1982।

(13) रिलिजियस फिलोसफी आफ विलियम जेम्स—आर० आर० सहाय, 1980।

(14) ओरिजन एण्ड ग्रोथ आफ रिलिजन—एफ० मैक्समूलर, 1964।

(15) सरना-दर्शन—सुखदेव उरांव, 1993।

(16) बौद्ध दार्शनिक—जयप्रकाश कदेम, 1992।

(17) कुरमाली लोकगीत—एक अध्ययन : डा० सन्तोष कुमारी जैन, 1987।

(18) ट्राइबल स्टडीज—ए० वी० शरण, 1978।

(19) झारखण्ड के कुर्मी—केदारनाथ महतो, 1991।

(20) सामाजिक-दर्शन—डा० अम्बेडकर (महाराष्ट्र परिषद् के अधिवेशन में 31 मई, 1936 को बम्बई में दिया गया बाबा साहब का भाषण)।
(21) सूर साहित्य में लोक-संस्कृति—आद्या प्रसाद त्रिपाठी, 1967।
(22) पथे चलाक लेहा नमस्कार—नन्द कुमार, प्रकाशक—छोटा नागपुर साहित्य संस्कृति संसद 64, पुरुलिया रोड, रांची।
(23) बिहार की जनजातियां—कुंवर सिंह तिलारा, एम० ए०, 1982।
(24) कुड़माली चारि—बसन्त कुमार मेहता, 1989।
(25) द मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री—शरत्चन्द्र राय, 1970।
(26) सरना फूल—करम विशेषांक, 1991 संपादक—सरना नवयुवक संघ, केन्द्रीय कार्यालय, रांची।
(27) संगम पत्रिका—डा० रामकुमार तिवारी, नागपुरी साहित्य, प्रकाशक—नागपुरी कला संगम, अंक 1, 1994।
(28) इण्डियन पिपुल्स वेलफेयर सोसायटी सोविनीयर, 1986।
(29) आयाम—मारवाड़ी कालेज, रांची 1986-87।
(30) झारखण्ड के स्वर—झारखण्ड खेल एवं सांस्कृतिक महोत्सव, 1995।
(31) बिहार के आदिवासी—डा० एल० पी० विद्यार्थी, 1987।
(32) द गोल्डन वाउ—फ्रेजर, वोल्यूम 2, पार्ट 5।
(33) झारखण्डेर लोकोसाहित्य—डा० बंकिम महतो, 1978।
(34) झारखण्डेर कुड़मी—राधा गोविन्द, 1985।
(35) बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, रांची—एन० कुमार।
(36) बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ इण्डिया—एन० कुमार।
(37) विश्व धर्म-दर्शन—श्री सांवलिया, बिहारी लाल वर्मा।
(38) भारतीय दर्शन—गगन देव गिरि।
(39) रावण और उसकी लंका—चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, प्रथम संस्करण , 1956-1993।
(40) जनजातीय आवाज (सरहुल महोत्सव) 1997—केन्द्रीय युवा सरना समिति, रांची।
(41) खड़िया धर्म और संस्कृति का विश्लेषण—पोलुस कुल्लू।
(42) एनसियेंट एण्ड हिन्दू इण्डिया—जे० टालवायस ह्वीलर।
(43). आर्यन सिविलायजेशन इन इण्डिया।
(44) भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-4, सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता, 1972।

(45) भारतीय दर्शन—भाग 1—डा० राधाकृष्णन्, 1973।
(46) इन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी—आर्थर एमुलीयन, पाल डिटरीचलन, डेविड कीट, लेओनार्ड मित्सर-1967।
(47) दर्शन की कहानी—विल डूरेन्ट।
(48) तुलनात्मक धर्म—रमाशंकर श्रीवास्तव, 1983।
(49) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोल्यूम 7-15, डब्ल्यू० वेन्टन, 1980।
(50) ट्राइब्स एण्ड कास्टॅस आफ बंगाल—एच० एच० रिजले, 1891।
(51) डिस्क्रीप्टीव इथनोलाजी आफ बंगाल—इ० टी० डाल्टन, 1872।
(52) लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया—सर जॉर्ज ग्रियर्सन, 1903।
(53) सेनसस आफ इण्डिया, वोल्यूम 7, डबल्यू० जी० लेसी, 1931।
(54) डिस्ट्रीक्ट गजेटियर आफ मानभूम—मि० कोपलैंड, 1910।
(55) द प्रजेन्ट कंडीशन आफ द कुरमी ट्राइव्स अण्डर द सोसियो-इकोनोमिक प्रैक्टिल एण्ड रिलिजयस इम्पेक्ट ऑन छोटा नागपुर टुडे—एल० के० महतो।

— — — —



लेखक परिचय

डॉ0 वृन्दावन महतो का जन्म 17 जनवरी, 1958 को गाँव-बाडला, तमाड़, जिला-राँची (झारखण्ड) के एक साधारण कृषक परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जिले के विभिन्न स्कूलों एवं कालेजों में हुई। 1985 में परास्नातक, 1999 में डाक्टरेट की उपाधि भी डॉ. रामदयाल मुण्डा के निर्देशन में राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड) से प्राप्त किया। आपको 2007 में 'न्यू लिंग्युसटिक सर्वे ऑफ इण्डिया' द्वारा '**भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर**' में ट्रेनिंग के लिए भेजा गया जिसे आपने पूरा किया। आपने विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित सेमिनार एवं गोष्ठियों में भाग लिया है एवं इनके विचारोत्तेजक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में हुआ है। सम्प्रति असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (कुड़माली), मारवाड़ी कालेज, राँची में अध्यापनरत हैं।

पुस्तक परिचय

प्रस्तुत पुस्तक में 'आदि धर्म कुड़मी' पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है साथ ही कुड़मी जनजाति का पारम्परिक रीति-रिवाज, समाजिक व्यवस्था, धर्म से सम्बन्धित पर्व-त्योहार, अनुष्ठानिक रीति-रिवाज के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। साथ ही कुड़मी समाज के लोगों का अति प्राचीनतम इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक कुड़माली भाषा प्रेमियों, प्रशासनिक सेवा में बैठने वाले छात्रों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी है।

Published by :
K.K. Publications
(Publishers of Indian Thinkers)
618, Katra, Allahabad-211 002 (U.P.) INDIA
Mobile : 9389485578
E-mail : kkpublicationssen@gmail.com

ISBN No. 978-81-87568-26-1

